

प्रकाशक—

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला  
हस्पताल रोड, लाहौर ।

मुद्रक—

ला० राम मेजा कपूर

मालिक

लाहौर आर्ट प्रेस

१६, अनारलकी

लाहौर ।

## विषय-सूची

कहानी		पृष्ठ
१. मंत्र	... ..	६
२. मुक्ति-मार्ग	... ..	३१
३. महातीर्थ	... ..	४६
४. रानी सारन्या	... ..	६७
५. सती	. ...	६४
६. क्षमा	.. ...	११३
७. पञ्च-परमेश्वर	.. ...	१२६
८. प्रायश्चित्त		१४४
९. शतरज के खिलाडी		१९६
१०. दो वैलों की कथा		१०८
११. सृजन भगन		२०४

---

## दो श्रेष्ठ कहानी संग्रह

मय का गज्य १)

तथा

अमावस्य २॥)

लेखक—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

“श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार में जीवित कल्पना शक्ति और विशाल सहानुभूति की भावना है। उनकी जैली स्वाभाविक है, वह कहीं भी बँध कर नहीं चलती। हमें विश्वास है कि पाठक उनकी कहानियों को अत्यधिक पसन्द करेंगे।”—लीडर (अलाहाबाद)

“श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार में कहानी लिखने की असाधारण प्रणिभा है। उनकी कल्पना उपजाऊ है, भाषा में जीवन है।”

—ट्रिव्यून, (लाहौर)

“हिन्दी-जगत चन्द्रगुप्त जी पर नाज कर सकता है और वस्तुतः वह हिन्दी जगत के लिए गौरव हैं।”

—विशाल भारत (कलकत्ता)

‘चन्द्रगुप्त जी की कल्पना ऊँचा है भाषा में भाव है, चित्रण म रग है, कहने में ढग है।’

—हम (बनारस)

‘चन्द्रगुप्त जी से हिन्दी को बहुत आशा है।’

—‘सरस्वती’ अलाहाबाद)

“चन्द्रगुप्त जी ने एक जगह लिखा है—‘मुझे विश्वास है कि पाठक मेरी इन कहानियों को अवश्य पसन्द करेंगे।’ इस अभिमान के वह पूरे अधिकारी हैं।”

—विश्वमित्र (कलकत्ता)

“हिन्दी के आठ-दस सर्वोच्च कोटि के कहानी-लेखकों में चन्द्रगुप्त जी का प्रमुख स्थान है।”

—चित्रपट (दिल्ली)

## भूमिका

लेखक तो हमेशा यही चाहता है कि उसकी सभी रचनाएँ सुन्दर हों, पर ऐसा होता नहीं। अधिकांश रचनाएँ तो बल करने पर भी साधारण होकर रह जाती हैं। अच्छे-से-अच्छे लेखकों की रचनाओं में भी थोड़ी-सी चीजें अच्छी निकलती हैं। फिर उनमें भी भिन्न-भिन्न रुचि की चीजें होती हैं और पाठक अपनी रुचि की चीजों को छाँट लेता है और उन्हीं का आदर करता है। हरेक लेखक की हरेक चीज, हरेक आदमी को पसन्द आए, ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

मेरी प्रकाशित कहानियों की संख्या ३०० के लगभग हो गई है। उनके कई संग्रह छप गए हैं, लेकिन आजकल किसके पास इतना समय है कि उनकी सभी कहानियों को पढ़ सके। अगर हम हरेक लेखक की हरेक चीज पढ़ना चाहें, तो शायद दस-पाँच लेखकों में ही हमारी जिन्दगी खत्म हो जाय। इसलिए हमारे मित्रों का बहुत दिना से प्रयत्न था कि मैं अपना कोई ऐसा संग्रह निकालूँ जिसमें पाठक को मेरी कृतियों का मुख्य निधारित करने में व्यवधा हो। जैसे मेरी रचनाएँ का समूह 'स्वाभाविक' नाम से जिसे पढ़ कर लोग जीवन का विषय में मेरी धारणाओं से परिचित हो सकें यह संग्रह इसी उद्देश्य से किया गया है। इसमें मैंने उन्हीं कहानियों का संग्रह किया है जिन्हें मैं खुद पसन्द करता हूँ और जिन्हें भिन्न-भिन्न रुचि के आलोचकों ने भी पसन्द किया है।

कहानी सदैव से जीवन का एक विशेष अंग रही है। हरेक बालक को अपने बचपन की वह कहानियाँ याद होंगी, जो उसने अपनी माता या बहन से सुनी थीं। कहानियाँ सुनने को वह कितना लालायित रहता था, कहानी शुरू होते ही वह किस तरह सब कुछ भूलकर सुनने में तन्मय हो जाता था, कृत्त और थिल्लियों की कहानियाँ सुनकर वह कितना प्रसन्न होता था—इसे शायद वह कभी नहीं भूल सकता। बालजीवन की मधुर स्मृतियों में कहानी शायद सबसे मधुर है। वह खिलौने और मिठाइयाँ और तमांगे सब भूल गए, पर वह कहानियाँ अभी तक याद हैं और उन्हीं कहानियों को आज उसके मुँह से उसके बालक उनी हर्ष और उत्सुकता से सुनते होंगे। मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी लालसा यही है कि वह कहानी बन जाय और उसकी कीर्ति हरेक जवान पर हो।

कहानियों का जन्म तो उसी समय से हुआ, जब आदमी ने बोलना सीखा; लेकिन प्राचीन कथा-साहित्य का हमें जो कुछ ज्ञान है, वह 'कथा सरित-सागर', 'ईसप की कहानियाँ' और 'अलिफ-लैला' आदि पुस्तकों से हुआ है। यह उस समय के साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। उनका मुख्य लक्ष्य उनका कथा-वैचित्र्य था। मानव-हृदय को वैचित्र्य में सदैव प्रेम रहा है। अनोखी घटनाओं और प्रसंगों को सुनकर हम अपने बाप-दादों की भाँति ही आज भी प्रसन्न होते हैं। हमारा खयाल है कि जन-रुचि जितनी आसानी अलिफलैला की कथाओं का आनन्द उठाता है, उतनी आसानी नवीन उपन्यासों का आनन्द नहीं उठा सकती और अगर टाल्सटाय के कथनानुसार जनप्रियता ही कला का आदर्श

मान लिया जाय, तो अलिफ़लैला के सामने स्वयं टाल्सटाय के 'वार ऐड पीस' और छूगो के 'ला मिजरेवल' की कोई गिनती नहीं। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारी राग रागिनियाँ, हमारी सुन्दर चित्रकारियाँ और कला के अनेक रूप, जिन पर मानव-जाति को गर्व है, कला के क्षेत्र से बाहर हो जायेंगे। जनरुचि परज और विहाग की अपेक्षा विरहे और दादरे को ज्यादा पसन्द करती है। विरहों और प्राम-गीतों में बहुधा बड़े ऊँचे दर्जे की कविता होती है, फिर भी यह कहना असत्य नहीं है कि विद्वानों और आचार्यों ने कला के विकास के लिये जो मर्यादाएँ बना दी हैं, उनसे कला का रूप अधिक सुन्दर और संयत हो गया है। प्रकृति में जो कला है, वह प्रकृति की है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य को तो वही कला मोहित करती है, जिस पर मनुष्य के आत्मा की छाप हो जो गीली मिट्टी की भाँति मानवी हृदय के साँचे में पड़कर संस्कृत हो गई हो। प्रकृति का सौन्दर्य हमें अपने विस्तार और वैभव में पराभूत कर देता है उनमें हमें आध्यात्मिक उल्लास मिलता है पर वही लक्ष्य जब मनुष्य की वृत्ति और रंगों और मनोमत्तों से रूचि होकर हमें सामान्य बना है, तो वह जैसे हमारा अपना ही जाना है उसमें हमें आत्मीयता का संदेश मिलता है

लेकिन भोजन जहाँ धोड़े से मसालों से अधिक रुचिकर हो जाता है वहाँ यह भाव प्रकृत है कि मसालों मात्रा से बढन न पावे। जिस तरह मसाला के बहुल्य से भोजन का स्वाद और उपयोगिता कम हो जाती है उन्हीं भाँति साहित्य भी अलंकारों के



देखना चाहते हैं कि किन मनोभावों से प्रेरित होकर उसने यह काम किया, अतएव मानसिक द्वन्द्व वर्तमान उपन्यास या गल्प का खास अंग है।

प्राचीन कलाओं में लेखक विलकुल नैपथ्य में छिपा रहता था। हम उसके विषय में उतना ही जानते थे, जितना वह अपने को अपने पात्रों के मुख से व्यक्त करता था। जीवन पर उसके क्या विचार हैं, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसके मनोभावों में क्या परिवर्तन होते हैं, इनका हमें कुछ पता न चलता था, लेकिन आजकल उपन्यासों में हमें लेखक के दृष्टि-कोण का भी स्थल-स्थल पर परिचय मिलना रहता है। हम उसके मनोगत विचारों और भावों द्वारा उसका रूप देखते रहते हैं और ये भाव जिनने व्यापक और गहरे अनुभवपूर्ण होते हैं उनकी ही लेखक के प्रति हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है। यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का अर्थ यही मनोवैज्ञानिक घटनाएँ और पात्रों का मनोवैज्ञानिक स्वरूप को स्पष्ट करने का निमित्त ही लागू जाना है। इसके अलावा अनेक नए नए उदाहरण हमें उपलब्ध हैं, जिनसे हमें पता चलता है कि मनोवैज्ञानिक विचारों का क्या स्वरूप है।

यों कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का अर्थ यही मनोवैज्ञानिक घटनाएँ और पात्रों का मनोवैज्ञानिक स्वरूप को स्पष्ट करने का निमित्त ही लागू जाना है। इसके अलावा अनेक नए नए उदाहरण हमें उपलब्ध हैं, जिनसे हमें पता चलता है कि मनोवैज्ञानिक विचारों का क्या स्वरूप है।



2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100

हमारी वह चुधा तो नहीं मिटती, जो इच्छा-पूर्णा भोजन चाहती है, पर फलों और मिठाइयों की जो चुधा हमें सदैव बनी रहती है, वह अवश्य कहानियों से तृप्त हो जाती है। हमारा खयाल है कि कहानियों ने अपने सार्वभौम आकर्षण के कारण संसार के प्राणियों को एक दूसरे से जितना निरुद्वेग कर दिया है, उनसे जो एकात्मभाव उत्पन्न कर दिया है, उनसे और किसी चीज ने नहीं किया। हम आस्ट्रेलिया का गेहूँ खाकर, चीन की चाय पीकर, अमेरिका की मोटरों पर बैठ कर भी उनको उत्पन्न करने वाले प्राणियों से बिलकुल अपरिचित रहते हैं; लेकिन मोपासां, अनाटोल फ्रांस, चेखव और टाल्सटाय की कहानियाँ पढ़ कर हमने फ्रांस और रूस से आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। हमारे परिचय का क्षेत्र सागरों और द्वीपों और पहाड़ों को लाँघता हुआ फ्रांस और रूस तक विस्तृत हो गया है। हम वहाँ भी अपनी ही आत्मा का प्रकाश देखने लगते हैं। वहाँ के किसान और मजदूर और विद्यार्थी हमें ऐसे लगते हैं, मानो उनसे हमारा घनिष्ठ परिचय हो।

हिन्दी में २०-२५ साल पहले गल्पों की कोई चर्चा नहीं थी। कभी-कभी वैंगना या अंगरेजी कहानियों के अनुवाद छप जाते थे। आज कोई ऐसा पत्र नहीं मिलेगा जो-चार कहानियाँ प्रतिमात्र न छपती हो। कहानियों का अद्भुत अद्भुत प्रसङ्ग निकलत जा रहे हैं। अभी बहुत दिन नहीं गए कि कहानियों का पढ़ना मनोरंजन का दुरुपयोग समझा जाता था। बचपन में हम कभी कोई किन्ना पढ़ते पढ़ते लिए जाते थे तो कहीं डाँट पड़ती थी। यह खयाल किया जाता था कि किन्ना से चरित्र भ्रष्ट हो जाता है और उन 'फिसाना-अजायब' और 'शुकवहत्तरी' और 'नोना-मैना' के दिनों



## मन्त्र

१

सन्ध्या का समय था। डाक्टर चट्टा गीन्फ़ खेलने से तैयार  
हो रहे थे। मातर द्वार से भासन खड़ी थी कि जो स्थाप एक डोली  
सबसे पहले दिखाई पड़े। डोली में पीछे एक बूढ़ा लाठा रखना  
रहा था। टापी थापर सब से भासन को रोक रक्के।  
दोनों धीरे धीरे आगे बढ़े पर पता चले कि सब से भासन  
आफ़े सवारी जमान पर सेर रखते। भासन को रोक रक्के।  
'हरे न चट्टे' डाक्टर मातर से भासन को रोक रक्के।  
सब कुछ यान से भासन न हूए।

बूढ़े ने हाथ जोड़ कर कहा 'हजूर बड़े पाराबे थाइमा' हू  
रा लडका कई दिन से

डाक्टर साहब ने सिगार जला कर कहा—कल सवेरे आओ, कल सवेरे; हम इस वक्त मरीजों को नहीं देखते ।

बूढ़े ने घुटने टेककर जमीन पर सिर रख दिया और बोला—दुहाई है सरकार की, लडका मर जायगा । हज़ूर, चार दिन आँखे नहीं . .

डाक्टर चड्ढा ने कलाई पर नजर डाली । केवल १० मिनट समय और बाकी था । गोल्फ-स्टिक खूँटी से उतारते हुए बोले—कल सवेरे आओ, कल सवेरे, यह हमारे खेलने का समय है ।

बूढ़े ने पगड़ी उतार कर चौखट पर रख दी और रोऊ बोला—हज़ूर एक निगाह देख लें । बस एक निगाह ! लडका ह से चला जायगा हज़ूर, सात लडकों में यही एक बच रहा है हज़ूर, हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे सरकार ! आप बड़नी हा, दीनबन्धु !

एस उजड़ू बहानी यहाँ प्राय रोज ही आया करते थे डाक्टर साहब उनके स्वभाव में गूँथ परिचित थे । कोई किमी ही रुठ रुठ, पर वे अपनी ही रट लगात जायेंगे । किमी मुनग नदी । और गाँवक उठाडे और बाहर निकल कर मोटर तरफ चले । वृद्धा यह कहना हुआ उनके पीछे बाँडा मर बटा बरम हागा इनर इया कोजिय, बडा गीन दुखी हूँ, मसा काठ और नहा ह रवृ ता

मगर डाक्टर साहब ने उसकी आँखें मुँह फेरकर इया नरि नहीं मोटर पर बैठकर चले कल सवेरे आना ।

मोटर चली गई। वृद्धा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य-संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव उसे अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को घुमाने, मुँह को कन्धा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिये सदैव तैयार रहते थे। जब तक वृद्धे को मोटर दिखाई दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी। फिर उसने कहारों से डोली उठाने को कहा। डोली जिधर से आई थी, उधर ही चली गई। चारों ओर से निराश होकर वह डाक्टर चड्ढा के पास आया था। इनकी बड़ी तारीफ़ मुनी थी। यहाँ से निराश होकर फिर वह किमी दूसरे डाक्टर के पास न गया। किस्मत ठोक ली।

उनी रात को उसका हैमना-ग्वेलना मान माल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार में सिधार गया। वृद्धे मा वप के जीवन का यही एक आधार था। इसी का मुँह देखकर जीत ध। इस दीपक के बुझने ही जीवन की अँधेरी रात भाँय भाँय करना लगी। वृद्धा के विशाल ममना दृष्टे हुए हृदय से निकल कर उस अन्धकार में आर्त-स्वर में रोने लगी।

के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था। उसे लेकर ही छोड़ता था। यही व्यसन था। इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था। मृगालिनी कई बार आ चुकी थी; पर कभी माँपों के देखने के लिये इतनी उत्सुक न हुई थी। कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गई थी, या वह कैलास पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी; पर उसका आग्रह बेमौका था। उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायेगी, भीड़ को देखकर साँप कितने चौकेंगे और गत के समय उन्हें छेडा जला कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे जरा भी ध्यान न आया।

कैलास ने कहा—नहीं, कल जहर दिखा दूँगा। इस बड़े अच्छी तरह दिखा भी तो न सकूँगा कमरे में निल रखने की जगह भी न मिलेगी।

एक महाशय न छेड़ कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते जी, जहाँ भी बात के लिये इनका टालमटोल कर रहे हो। मिस गोविन्द, हार्गिन न मानना। इधे कैसे नष्ट दिग्गाने।

दूसरे महाशय न और रहा चढ़ाया—मिस गोविन्द इनकी सीधी आँसु भाती है तभी आप उनका मित्राज करन हैं, दूसरी कोई होनी तो उसी बात पर बिगड़ पड़ो जानी।

तीसरे साहब न मनाफ रह गया। अची बोलना छोड़ देते भला कोई बात है उस पर आपसे दावा है कि मृगालिनी लिये जान हाजिर है।

मृगालिनी ने दया कि य गोद उम चग पर चढ़ा रहे

छोटा-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलासनाथ ने लिखा था। वही मुख्य ऐक्टर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज पहने, नंगे मिर, नंगे पाँव, इधर-से-उधर मित्रों की आव-भगत में लगा हुआ था। कोई पुरारता—कैलास, जरा इधर आना, कोई उधर से बुलाता—कैलास, क्या उधर ही रहोगे। सभी उसे छेड़ते थे चुहले करते थे। बेचारे को जरा दम मारने का अवकाश न मिलता था।

महसा एक रमणी ने उसके पास आकर कहा—क्यों कैलास, तुम्हारे साँप कहाँ हैं ? जरा मुझे दिखा दो।

कैलास ने उससे हाथ मिलाकर कहा—मृणालिनी, इस वक्त जमा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने अप्रह किया—जी नहीं तुम्हें दिखाना पड़ेगा। मैं आज नहीं मानन की, तुम रोज कल-कल करते रहते हो।

मृणालिनी और कैलास दोनों महपाठी थे और एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए। कैलास को साँपों का पालन खेलाते और नचाने का शौक था। तरह-तरह के साँप पाल रखे थे। उनका स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करने के लिये दोडे दिन हुए, उन्होंने विद्यालय में साँपों पर एक मरज का अध्ययन दिया था। साँपों को नचाकर दिखाने भी था। साँपों का बड़े-बड़े परिदृश्य भी यह अध्ययन सुनकर जाना रह गया था। यह विद्या उसने एक बड़े सपर से सीखी थी। साँपों की जड़ी-बूटियों जमा करने का उसे मरज था। इतना पता भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति



है। किसी के दाँत नहीं तोड़े गये। कहिए तो दिखा दूँ? यह कर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला—मेरे इससे बड़ा और जहरीला साँप दूसरा नहीं है। अगर किसी काट ले, तो आदमी आनन-फ़ानन मर जाय। लहर भी न इसके काटे का मंत्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ?

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—नहीं, नहीं, कैलास ईश्वर के लिये इसे छोड़ दो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ!

इस पर एक दूसरे मित्र बोले—मुझे तो विश्वास नहीं लेकिन तुम कहते हो तो मान लूँगा।

कैलास ने साँप की गरदन पकड़कर कहा—नहीं माह्व, आँखों से देख कर मानिये। दाँत तोड़ कर बस में किया, तो किया। साँप बड़ा समझदार होता है। अगर उसे विश्वास जाय कि इस आदमी से मुझे कोई हानि न पहुँचेंगी, तो वह हाँगीज न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलास पर इस ब्रह्म भूत है, तो उसने यह समाशासक ब्रह्मण्य के विचार में कहा—मैंने, अब यहाँ से चला दूँगा माना गुरु हो गया आनन फोड़ बाज मनाई। यह कहते हुए उसने कैलास का पकड़ कर चलने का इशारा किया और कमर में निकल गई। कैलास ने 'ब्रह्म' का शब्द-समयान करके ही उस लेना था उसने मार की गरदन पकड़ कर जोर से दबाई, इनकी दबाई कि उसका मुँह लाल हो गया वह की मारी नमं न

मे दोली—'यार लोग मेरी बगलन न करें, मैं खुद अपनी बगलन कर लूँगी। मैं इस वक्त सर्पों का तमाशा नहीं देखना चाहती। चलो छुट्टी है।'

इस पर मित्रों ने ठट्ठा लगाया। एक साहस बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहते, पर कोई दिग्बाये भी तो ?

कैलास को मृणालिनी की मैपों हुई खूबत देख कर मातूम था कि इस वक्त उसका इनकार वास्तव में उसे घुरा लगा है। वो ही प्रीति-भोज समाप्त हुआ और गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को सर्पों के दरबे के सामने ले जाकर फिर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोल कर एक-एक सर्प को निकालने लगा। वह 'क्या कमाल था' ऐसा जानता था कि ये कीड़े उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-

भाव समझते हैं किसी को उठा लिया किसी को गरदन में लपेट लिया किसी को हथ में लपेट लिया मृणालिनी बार-बार करती कि इन्हें गरदन में न डालो दर ही न दिग्बायो। वस, नचा दा कैलास की गरदन में सर्पों का लपेटन टग्व करती जान निकला जती थी पटन रही थी कि मैं व्यथ हो सर्प दिग्बायो को कहा मगर कैलास एक न सुनता था। का क सम्मुख अपन सर्प-कला-प्रदर्शन का ऐसा अवसर है वह जब चूरना एक मित्र न टीका की—'दोन तोड होंगे ?'

कैलास हैसकर बोला—'दोन तोड डालना मदारियों का काम



साप ने अब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार कभी न पाया था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझसे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि यह मुझे मार डालना चाहते हैं, अतएव वह आत्मरक्षा के लिये तैयार हो गया।

कैलास ने उसकी गरदन खूब दबाकर उसका मुँह खोल दिया और उसके जहरीले दाँत दिखाते हुए बोला—जिन सज्जनों को शक हो, आकर देख ले। आया विश्वास, या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दाँत देखे और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने सन्देह को स्थान कहाँ। मित्रों की शंका-निवारण करके कैलास ने साँप की गरदन ढीली कर दी और उसे जमीन पर रखना चाहा, पर वह काला गेहुवन क्रोध से पागल हो रहा था। गरदन नरम पड़ते ही उमने सिर उठाकर कैलास की उँगली में जोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलास की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उमने जोर से उँगली दवाली और अपने कमरे की तरफ़ दौड़ा। वहाँ मेज की दरार में एक जड़ी रक्खी हुई थी, जिसे पीसकर लगा उन से घातक विष भी दूर हो जाता था। मित्रों में हलचल पड़ गई। बाहर महफिल में भी खबर हुई। डाक्टर साहब घबड़ाकर दौड़ फौरन उँगली की जड़ कसकर बाँधी गई और जड़ी पीसन के लिये दी गई। डाक्टर साहब जड़ी के कायल न थे। वह उँगला का डन्ना भाग नज़र में काट देना चाहते थे, मगर कैलास की जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृगालिनी पियानो पर बैठी हुई थी। वह खबर सुनते ही दौड़ी और कैलास



एक महाशय बोले—मोडे मंत्र भाडनेवाला मिले, तो सन्भव है, प्रय भी जान दब जाय ।

एक सुमलमान मज्जन ने इनका समर्थन किया—अरे साहब, कुप्र में पढी हुई लाशें जिन्दा हो गई हैं। ऐसे-ऐसे वाकमाल पड़े हुए हैं।

डाक्टर चड्ढा बोले—मेरी अरु पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी चानो मे आ गया। नरनर लगा देता, तो यह नौबत ही क्यों आती। बार-बार समझाना रहा कि बेटा सांप न पालो, मगर जौन सुनता था 'बुलाइये, किसी भाड-फूँक करनेवाले ही को बुलाइये। मेरा मध कुप्र ले-ले मैं अपनी नारी जायदाद उसके पैरो पर रख दँगा लँगोटी बांधकर घर से निकल जाऊँगा, मगर मेरा केलाम मेरा प्यारा केलाम उठ बैठे ईश्वर के लिये किसी को बुलाइये।

--- एक महाशय का किसी भाडनेवाले से परिचय था। वह मोहकर उस कुप्र नाम मगर केलाम की मगर देकर उसे मंत्र ज्ञान के विमल से पढ़ा दिया—अब क्या हो सकता है मरकर जो कुछ होना था वो हुआ।

अब मूख यह क्या नहीं कहता कि जो कुछ न होना था वो हुआ जो कुछ होना था वह क्या हुआ। भा-वाप न देते का संहरा कहा उक्त मुग़ालनी का कामना-नर क्या पल्लव और पुष्प से रञ्जित हो सका। मन व वह स्वरा-स्वप्न जिनम जीवन आनन्द का मोन बना हुआ या क्या व पूर हो चुक। जीवन व



“न देगा न सही । घास तो कहीं नहीं गई है । दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा ?”

इतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज दी—भगत, भगत क्या सो गये ? ज़रा किवाड़ खोलो ।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये । एक आदमी ने अन्दर आकर कहा—कुछ सुना, डाक्टर चड्ढा वायू के लडके को साँप ने काट लिया ।

भगत ने चौंकर कहा—चड्ढा वायू क लडके को । वही चड्ढा वायू हैं न, जो छावनी में बँगले में रहते हैं ?

“हाँ-हाँ वही । शहर में हल्ला मचा हुआ है । जाते हो तो जाओ, आदमी बन जाओगे ।”

बृटे ने कठोर भाव से सिर हिला कर कहा—मैं नहीं जाता । मेरी बला जाय । वही चड्ढा है खूब जानता हूँ । भैया को लेकर उन्हीं क पास गया था खेतन जा रहे थे पैरो गिर पडा कि एक नजर देख लीजिये मगर सीधे मुँह ब न तक न की । भगवान बैठे सुन रहे थे । खूब जान पडेगा कि बट का घम कैसा होता है । कइँ लडके है ?

‘ नहीं जी यही तो एक लडका थ सुना है, सब न जवाब द दिया है ।

‘ भगवान बडा कारमाज है । उस वक्त मरी आँखों स आँसू निकल पडे थे, पर उन्हे तनिक भी दया न आई थी । मैं तो उनक द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता ।





रग है ? दुनिया घुरा कहेगी, फो, कोई परवाह नहीं । छोटे आठमिजो मे तो मर पेव होते ही हैं । बडों में कोई ऐव नहीं होना । डेवना होते हैं ।”

भगत के लिये जीवन मे यह पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पाकर वह बैठा रह गया हो । ८० वर्ष के जीवन मे ऐसा कभी न हुआ कि मांष की खबर पाकर बड दौडा न गया हो । माघ-पूस की अंधेरी रात, चैन-वैनाथ की धूप और लू, सावन-भादो के बड़े हुए नदी और नाले, किसी की दसने कभी परवाह न की । वह तुरन्त घर से निकल पडता था, नि.स्वार्थ, निष्काम । लेने-देने का विचार कभी दिल मे आया ही नहीं । यह ऐसा काम ही न था । ज्ञान का मूल्य कौन दे सकता है ? यह एक पुण्य कार्य था । सैकड़ो निराशों को उसक मन्त्रो ने जीवन-दान दे दिया था पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका । यह खबर सुन कर भी मोन जा रहा है ।

बुढिया ने कह — नमानु अंगोठी क पाम रक्खा हुई है । उसक भी आज टाई पैसे हो गय इनी हा न थी ।

बुढिया यह कह कर लैटी बूट न कुम्पा बुन्नाइ, कुछ देर खडा रहा, फिर बैठ गया अन्न मो लेट गया पर वह खबर उमक हृदय पर बोझ की भांति रक्खा हुई थी । उन मालूम हो रहा था उमकी कोई चीज खो गई है उसे मार कपड गीले हो गये हैं या पेरो मे कीचड लगा हुआ है । जेने कोई उमक मन मे बैठा हुआ उसे घर से निकालन क लिये कुरेद रहा है । बुढिया जरा देर



खबर न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव का चौकीदार गस्त लगा रहा था। बोला—कैसे उठे भगत, आज तो बड़ी सरदी है! कहीं जा रहे हो क्या?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहीं! देखता था अभी कितनी रात है, भला कै बजे होंगे?

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या। अभी धाने से आ रहा था, तो देखा कि डाक्टर चड्ढा बाबू के बँगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने सुना होगा, कीड़े ने छू लिया है। चाहे मर भी गया हो। तुम चले जाओ, तो शायद बच जाय। सुना है, दस हजार तक देने को तैयार हैं।

भगत—मैं तो न जाऊँ चाहे वह दस लाख भी दें। मुझे दस हजार या दस लाख लेकर करना क्या है? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगने वाला बैठा हुआ है!

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह अपने क्रावू में नहीं रहती। पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जवान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था, दम्भ था, हिंसा थी, पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलाई, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं!

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था। चेतना रोकती थी, उपचेतना ठेलती थी। सेवक स्वामी पर हावी था।



डाक्टर चड्ढा ने दौड़कर नारायणी को गले लगा लिया। नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृगालिनी के नाम के सामने आँगों में आँसू भरने लगी—'अब कैसे तबीयत है ?'

एक घण्टा में चारों तरफ़ खबर फैल गई। मित्रगण मुखारुखाट उठने आने लगे। डाक्टर साहव बड़े अद्भुत-भाव से हर एक के सामने भगत का वेश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनो के लिये उत्सुक हो उठे, मगर प्रन्दर जाकर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—'अभी तो यहाँ बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली, अपने पास से तमाखू निकालकर भरी।'

यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुद्धिया के उठने से पहले घर पहुँच जाऊँ।'

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहव न नारायणी से कहा—'बुड्ढा न-जान कहा चला गया एक चिलम तमाखू का भी खादार न हुआ'।

नारायणी ने कहा—'मैं न जाना था इन फाँड़े बड़ी रकम देगी।'

डाक्टर चड्ढा बोले—'रात को तो मैं नहीं पहचाना पर ज़रा साफ़ हो जान पर पहचान गया एक बार यह एक मरीज को लेकर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं खेतन जा रहा था और मरीज को देखन से इनकार कर दिया था। आज उम दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट



## मुक्ति-मार्ग

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने नामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देख कर होना है भूगुरु अपने ऊँच क खेतों को देखता, तो उस पर नशा-सा छा जाता 'तीन बीघे ऊँच थीं । इमसे छ सौ रुपये का अनायास ही मिल जाएगा और जो कहीं भगवान न डाँड़ी नज़र कर दी तो फिर क्या पछता' दोनों ब्रैल बुडट हो गए अब की नई गोड़े बन्सुर क मजे से ले आवेगा कहीं दो बीघे खेत और मिल गए तो निम्न लेगा' स्वयं की क्या चिन्ता है ? वनिए अभी से उसकी तृशामद करने लग थ । ऐसा कोई न था, जिससे उसन गाव मे लडाई न की हो । वह





के डाड़ से क्यों नहीं ले गए ? क्या मुझे कोई चूड़ा-चमार समझ लिया है ? या धन का घमंड हो गया है ? लौटाओ इनको !

बुद्धू—महतो, आज निकल जाने दो। फिर कभी इधर से आऊँ, तो जो चाहे सजा देना।

भाँगुर—कह दिया कि लौटाओ इन्हें। अगर एक भेड़ भी भेड़ पर आई, समझ लो, तुम्हारी खैर नहीं है।

बुद्धू—महतो, अगर तुम्हारी एक बैल भी किसी भेड़ के पैरो-तले आजाय, तो मुझे बिठा कर सौ गाजियाँ देना।

बुद्धू घात तो बड़ी नम्रता से कर रहा था, किंतु लौटने में अपनी हेठी समझता था। उसने मन में सोचा—इस तरह जरा जरा सी धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा तो फिर मैं भेड़ें चरा चुका। 'आज लौट जाऊँ तो कल को निकलने का रास्ता ही न मिलेगा। सभी गेव जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पीटा आदमी था। शायद सोडा भेड़े थे। उन्हें खेतों में बैठाने के लिये फी रान अठ अठ सोडा मजदूरी मिलनी थी। इसर उपरान्त दूध दबना व उन के फव्वल बनाना था। साचन लग। इनमें गरम ही रहें हैं मर कर ही क्या लग। कुछ इनका दबेल तो हूँ नहीं। भडा न जा हरा हरा पानया दबो तो अधीर हो गई खन म घुन पही। दुह उर हडा न बार-बार कर वन के किनार न हटाना था और व इधर-उधर न निकलकर खन में जा पडना था। भाँगुर न आ ग हाकर कहा—तुम मुझसे एकडा जनान चले हा ना तुम्हारी मार हड्डा। निकाल दूँगा।



जानकर अनजान बनते हो। बुद्धू को जानते नहीं, कितना भग-  
 डालू आदमी है। पब भी कुछ नहीं विगड़ा। जाकर उसे मना लो।  
 नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गाँव पर आफत आ जायगी।  
 भोगुर की समझ में वान आई। पछताने लगा कि मैंने कदों-से  
 कहाँ उने रोका। अगर भेडे थोड़ा-बहुत चर ही जातीं, तो कौन  
 मैं उजड़ा जाना था। हम किनारों का कल्याण तो दबे रहने  
 में ही है। ईश्वर को भी हमारा सिर उठा कर चलना अच्छा  
 नहीं लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था,  
 किन्तु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अगहन का  
 महीना था, कुहरा पड़ रहा था। चारों ओर अंधकार छाया हुआ  
 था। गाव से बाहर निकला ही था कि नहसा अपने ऊख के खेत  
 की ओर अग्नि की ज्वाला देखकर चौक पड़ा। छाती धड-  
 कने लगी खेत में आग लगी हुई थी। बेनहाशा दौड़ा। मनाना  
 जाना था कि मेरे खेत में न हो, पर ज्यों-ज्यों समीप पहुँचना  
 था वह आशामय भ्रम शान होता जाता था। वह अनर्थ हो  
 ही गया जिसके निवारण के लिए घर में चला था। हत्यारे  
 न आग लगा ही थी ओर मर पड़े मर गाव को चौपट  
 किया। उसे पता जान पड़ना था कि वह खेत आज बहुत  
 समीप आ गया है मानो बीच के परती खेतों का अग्नित्व ही  
 नहा रहा अन्त में जब वह खेत पर पहुँचा तो आग प्रचण्ड  
 रूप धारण कर चुकी थी भोगुर न 'हाय-हाय' मचाना शुरू  
 किया। गाव के लोग दौड़ पड़े ओर खेतों से अरहर के पौधे

,

...

बैठा रहता। पूस का महीना आया। जहाँ सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड़ की सुगंध उड़ती थी, भट्टियाँ जलनी रहती थीं, और लोग भट्टियों के सामने बैठे हुक्का पिया करते थे, वहाँ सम्राटा छाया हुआ था। ठंड के मारे लोग साँफ ही से किवाड़े बढ़ करके पड़ रहते, और मींगुर को कोसते। माघ और भी कष्टदायक था। ऊख केवल धनदाना ही नहीं, किसानों का जीवनदाता भी है। उसी के सहारे किसानों का जाड़ा कटता है। गरम रस पीते हैं, ऊख की पत्तियाँ नापते हैं, उनके अगोड़े पशुओं को खिलाने हैं। गाँव के सारे कुत्ते, जो रात को भट्टियों की राख में सोया करते थे, ठंड से मर गये। कितने ही जानवर चारे के अभाव से चल बसे। शीत का प्रकोप हुआ और सारा गाँव खोली-बुखार में प्रस्त हो गया और यह नारा विपत्ति मींगुर की करनी थी—अभागो, हत्यारे मींगुर की।

मींगुर ने सोचते-सोचते निश्चय किया कि दुग्धू की दशा भी अपनी ही-सी बनावैगा। उसके कारण मेरा सर्वनाश होगया, और वह चैन की बंजी बजा रहा है। मैं भी उसका सर्वनाश करूँगा।

जिस दिन इस घातक कलह का दीनारोपण हुआ, उसी दिन से दुग्धू ने इधर पाना छोड़ दिया था। मींगुर ने उससे खन-खन बहाना शुरू किया। वह दुग्धू को दिखाना चाहता था कि तुम्हारे ऊपर मुझे कितना संदेह नहीं है। एक दिन कंदन लेने के बहाने गया, फिर दूध लेने के बहाने। दुग्धू उसका खूब आदर-

तो क्या बुरा करता था ? यह अन्याय किनसे सहा जायगा ?

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टोले की तरफ चला गया। हरिहर को पुकारा। हरिहर ने आकर राम-राम की और चिलम भरी। दोनों पीने लगे। यह चमारों का मुखिया बड़ा दुष्ट आदमी था। सब किसान इससे थर-थर काँपते थे।

झींगुर ने चिलम पीते-पीते कहा—आजकल फाग-वाग नहीं होती क्या ? सुनाई नहीं देता।

हरिहर—फाग क्या हो, पेट के धन्धे से छुट्टी ही नहीं मिलती। कहो, तुम्हारी आजकल कैसी निभती है ?

झींगुर—क्या निभती है। नकटा जिया बुरे हवाले। दिन-भर कल में मजदूरी करते हैं, तो चूल्हा जलता है। चाँदी तो आजकल बुद्धू की है। रखने को ठौर नहीं मिलता। नया घर बना, भेड़े और ली हैं। अब गृहपरवेस की धूम है। मानों गाँवों में सुपारी जायगी।

हरिहर—लक्ष्मी मैया आती हैं तो आदमी की आँखों में सील आजाता है पर उसको देखो, धरती पर पैर नहीं रखता। बोलता है तो ऐंठकर बोलता है

झींगुर -क्यों न ऐंठ, उस गाँव में कौन है उसकी टक्कर का ? पर यार, यह अनोखी नहीं देखी जाती। भगवान दे, नो मिर भुका कर चन्तना चाहिए। यह नहीं कि अपन बग़ावर किमी को समझे ही नहीं। उसकी डींग सुनाता हूँ नो बदन में आग लग जाती है। कल का बागी आज का सेठ। चला है हमी से अकडने।

।। बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की दूनी कर दी थी। अगर कोई एतराज करता, तो बेलाग था—तो भैया, भेड़ें तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ। जी न ह, मत रक्खो, लेकिन मैंने जो कह दिया है, उससे एक कौड़ी कम नहीं हो सकती। गरज थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे रहते थे, मानो पण्डे किसी चात्री के पीछे पड़े हो।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, और जो है वह भी समया-वार छोटा-बड़ा होता रहता है। यहाँ तक कि कभी वह अपना राट् आकार ममेटकर उसे कागज के चन्द्र अक्षरों में छिपा लेती। कभी-कभी तो मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती है, आकार का पीप हो जाता है। किन्तु उनके रहने को बहुत स्थान की जरूरत होती है। वह आई और घर बढ़ने लगा। छोटे घर में लक्ष्मी से नहीं रहा जाता। बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा। द्वार पर बरामदा डाला गया, दो की जगह छः कोठरियाँ बनवाई गईं। यो कहिए कि एकान नए सिरे से बनने लगा। किसी किसान से लकड़ी माँगी, किसी से खपरो का आँवा लगाने के लिए उपले, किसी से बाँस और किसी से सरकण्डे। दीवार की उठवाई देनी पड़ी। वह भी नकद नहीं, भेड़ों के बच्चों के रूप में। लक्ष्मी का यह प्रताप है। सारा काम बेगार में हो गया। अन्त में अच्छा-खासा घर तैयार हो गया। गृह-प्रवेश के उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। इधर भींगुर दिन-भर मजदूरी करता तो कहीं आधे पेट खन्न मिलता। बुद्धू के घर कंचन बरस रहा था। भींगुर जलता था,



उसने विद्वान कहा था 'सुन्दर'।

श्रीगुरु और शिष्य के सम्बन्ध में यह बात सुनकर श्रीगुरु  
सोचने लगे। तब वह स्वयं, समस्त शिष्य गुरु के पास आकर  
श्रीगुरु के पास, जो एक-एक करके आते, उन्हें 'सुन्दर' के नाम  
रखी जाती है।

२

दूसरे दिन श्रीगुरु का घर जाकर लम्बी रात तक सुन्दर  
पहुँचा। सुन्दर ने पूछा 'क्यों रात का समय नहीं आया?'

श्रीगुरु जा सो रहा है। वसन्त पूर्णिमा के दिन आया था  
मेरी शिष्या को अपनी भर्त्सना का भाव क्या नहीं पड़ा होगा  
बेचारी मुँह में बेटी बेटी मर्दानगी है। न धाम, न जाम, न  
मिलाने ?

बुद्ध भैया, मेरा नाम भ्रम नहीं रहना। भ्रमों को जानते हो  
एक ही हत्याकाण्ड है। उमा-सुन्दर ने मेरी ही गर्दन मार डाली।  
न जान क्या मिला है। तब मैं कान पकड़ कि श्वशुर-भ्रम  
न पाऊँगा। निश्चिन्त सुन्दरों एक ही मारिया है, उमदा कोई  
करगा। जब चाहे पहुँचा दो।

यह कह कर बुद्ध अपने गदात्मक का सामान दिखाने लगा।  
घी, शकर, मैदा तराई में सब मंगा रखा था। केवल 'मृत्युनाशक'  
की कथा की दर थी। भागुर की आशु कुल गई। ऐसी तैयारी न  
उसने स्वयं कभी की थी, और न कभी किसी को करतें देती थी।  
मजदूरी करके घर लौटा, तो मधुम पहले जा काम उसने किया

अभी कल लँगोटी लगाए खेनों में कौए हँकाया करता था, आज उसका आसमान में दिया जलता है।

हरिहर—कहो, तो कुछ उताजोग करूँ ?

मींगुर—क्या करोगे ? इसी डर से तो वह गाय भैंस नहीं पालता।

हरिहर—भेड़े तो हैं ?

मींगुर—क्या बगला मारे पखना हाथ !

हरिहर—फिर तुम्हीं सोचो।

मींगुर—ऐसी जुगुत निकालो कि फिर पनपने न पावे।

इसके बाद फुस-फुस करके बात होने लगी। यह एक रहस्य है कि भलाइयो में जितना द्वेष होता है, बुराइयों में उतना ही प्रेम। विद्वान् विद्वान् को देखकर, माधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलना है। एक दूमरे की मुरत नहीं देखना चाहता पर जुआरी जुआरी को देखकर शराबी शराबी को देखकर चोर चोर को देखकर महानुभूति दिग्माना है महायत्ना करना है एक पड़ित जी अंगार औंधरे में ठोकर खाकर गिर पड़े तो दूमर पड़ित जी उन्हें उठाने व बदले दो ठोकरे और लगा-वेगे कि वह फिर उठ ही न सके पर एक चोर पर आपुन चाइ देखे दूमरा चोर उसकी आइ कर लेन है बुराइ से सब प्रता करते है इसलिए बुरा म परस्पर प्रेम होता है। भलाइ को मारा समार प्रशसा करत है इसलिए भलो म विरोध होता है चोर को मार कर चोर क्या पावगा प्रता विद्वान का अपमान

हरिहर—तुम नहीं लाठी कन्धे पर गकरो बल्लिया को बाँ रहे थे ?

बुद्धू—बड़ा सचा है तू ! तूने मुझे बल्लिया को बाँयते देखा था ?

हरिहर—तो मुझ पर काहें को बिगडते हो भाई ? तुमने नहीं बाँधी, नहीं सही ।

ब्राह्मण—इसका निश्चय करना होगा । गो-हत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । कुछ हँसी-ठट्टा है ।

भोगुर—महाराज, कुछ जान-बूझ कर तो बाँधी नहीं ।

ब्राह्मण—इससे क्या होता है ? हत्या इमी तरह लगती है, कोई गऊ को मारने नहीं जाता ।

भोगुर—हाँ, गउओं को खोलना-बाँधना है तो जोखिम का काम !

ब्राह्मण—शास्त्रो मे इसे महापाप कहा है । गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं ।

भोगुर—हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही । इसी से न इसका मान होता है । जो माता, सो गऊ, लेकिन महाराज, चूक हो गई । कुछ ऐमा कीजिये कि थोड़े मे बेचारा निपट जाय ।

बुद्धू खडा सुन रहा था कि अनायास मेरे सिर हत्या मठी जा रही है । भोगुर की कूटनीति भी समझ रहा था । मै लाख कहूँ, मैने बल्लिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन ? लोग यही कहेंगे, कि प्रायश्चित्त से बचने के लिये ऐसा कह रहा है ।

ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित्त कराने मे कल्याण

वह अपनी बहिया को बुद्धू के घर पहुँचाना था। उसी रात को बुद्धू के यहाँ 'सत्यनारायण की कथा' हुई। ब्रह्मभोज भी किया गया। सारी रात विप्रो का आगत-स्वागत करते गुजरी। बुद्धू को भेड़ों के झुण्ड में जाने का अवकाश ही न मिला। प्रातःकाल भोजन करके उठा ही था (क्योंकि रात का भोजन सवेरे मिला था) कि एक आदमी ने आकर खबर दी—बुद्धू, तुम यहाँ बैठो हो, उधर भेड़ों में बहिया मरी पड़ी है। भले आदमी, उसकी पगहिया भी नहीं खोली थी ?

बुद्धू ने सुना, और मानो ठोकर लग गई। भोगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था। बोला—हाय मेरी बहिया ! चलो, जरा देखूँ तो, मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी। उसे भेड़ों में पहुँचा कर अपने घर चला गया। तुमने वह पगहिया कब लगा दी ?

बुद्धू भगवान् ज्ञाने जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो। मैं तो तब से भेड़ों में गया ही नहीं।

भोगुर ज्ञाने तो पगहिया कब लगा दी ? मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी।

एक प्राणिक मरी तो भेड़ों में ही नहीं, दुनिया में यही रहना कि बुद्धू की पगहिया कब लगाई ? मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी।

दरदर—मैंने कल साभ का १०० भेड़ों में पगहिया कब लगाई थी।

बुद्धू रुक



होता था। भला ऐसे अवसर पर कब चूमनेवाले थे। फल यह हुआ कि दुग्धू को हत्या लग गई। ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे। कमर निकालने की घात मिली। तीन मास का भिक्षा-दण्ड दिया, फिर मात तीर्थ-स्थानों की यात्रा, उस पर पाँच सौ विप्रों का भोजन और पाँच गजों का दान। दुग्धू ने सुना, तो बधिया बैठ गई। रोने लगा तो दण्ड घटाकर दो मान का दिया गया। इसके सिवा कोई रिश्तायत न हो सकी। न कहीं अपील, न कहीं फरियाद। बेचारे को यह दण्ड स्वीकार करना पडा।

६

दुग्धू ने भेडे ईश्वर को माँपी। लडके छोटे थे। स्त्री अकेली क्या-क्या करेगी। जाकर द्वारों पर खड़ा होता, और मुँह छिपाए हुए कहता - गाय की बाछी दिया वनवास। भिक्षा तो मिल जाती, किन्तु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर अपमान-जनक शब्द भी सुनन पड़त। दिन को जो कुछ पाना वही शाम को किसी पेड़ के नीचे बना कर खा लेता और बस पड़ रहना। कष्ट की तो उसे परवा न थी भडा के साथ दिन-नर चलता ही था, पड़ के नाचे सोना हा या भोजन भी इनमें कुछ ही अच्छा मिलता होगा पर लज्जा था भिक्षा मागन को बगल करके सब सोइ ककशा यह व्यग्य कर डती या कि राटा कम न के अच्छा डग निकाला हा ता उस हादिक बदना होनी या पर कर क्या

दा महीन के बाद वह घर लाटा चल बटे हुए थे दुबल इतना मानो साठ वर्ष का बूढा हा नाथयात्रा के लिये स्त्रियों



और किस लिये जलता ?

सन की कल बन्द हो जाने के कारण मींगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। मींगुर भी उन्हीं में था। सातवें दिन मजदूरी के पैसे लेकर घर आता और रात-भर रहकर सवेरे फिर चला जाता था।

बुद्धू भी मजदूरी की टोह में वहीं पहुँचा। जमादार ने देखा, दुर्बल आदमी है; कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरो को गारा देने के लिये रख लिया। बुद्धू सिर पर तसला रखे गारा लेने गया तो मींगुर को देखा। राम-राम हुई, मींगुर ने गारा भर दिया बुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनों चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे

मल्लया-ममय मींगुर न पला कुल बनाओगे न ?

बुद्धू नहीं तो गाँवों क्या ?

मींगुर मैं तो एक जन चरन कर रहा हूँ इस जुन मत्त पर काय इन के कौन समझेंगे ?

बुद्धू और उधर सब हवा उड़ा रहा हूँ बगैर त आँ आया मैं घर न लेता क्या हूँ ? मैं तो एक ममय ममय था क्या मैं बड़ा महीना मिलन है इसका उधर मैं चरन पर कल गंधे लेता हूँ। तुम तो ममय उधर उधर मैं इन्तलय तुम्हारा उधरया सेको मैं चरन है ?

मींगुर तब भी ना ना है



बुद्धू—तबे बहुत हैं । यही गारे का तमला माँजे लेता हूँ ।

आग जली, आटा गूँधा गया । म्हीगुर ने कच्ची-पक्की रोटियाँ बनाई । बुद्धू पानी लाया । दोनों ने लाल मिर्च और नमक से रोटियाँ खाई । फिर चिलम भरी गई । दोनों आदमी पत्थर की सिलों पर लेट गए और चिलम पीने लगे ।

बुद्धू ने कहा—तुम्हारी ऊख से आग मैंने लगाई थी ।

म्हीगुर ने विनोद के भाव से कहा—जानना हूँ ।

थोड़ी देर के बाद म्हीगुर बोला—बछिया मैंने ही बाँधी थी, और हरिहर ने उसे कुछ गिला दिया था ।

बुद्धू ने वैसे ही भाव से कहा—जानना हूँ ।

फिर दोनों सो गए ।

— — —

और किस लिये जन्ता

सन की कल इन्द्र हो जाने के कारण भौंगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। भौंगुर भी उन्हीं में था। मानवें दिन मजदूरी के पैसे लेकर घर आता और रात-भर रहकर सबेरे फिर चला जाता था।

दुद्धू भी मजदूरी की टोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा, दुर्दल आदमी है; कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरो को गारा देने के लिये रख लिया। दुद्धू तिर पर तसला रखे गारा लेने गया, तो भौंगुर को देखा। राम-राम हुई, भौंगुर ने गारा भर दिया, दुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनो चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

मन्व्या-समय भौंगुर ने पूछा—कुछ बनाओगे न ?

दुद्धू—नहीं तो खाऊँगा क्या ?

भौंगुर—मैं तो एक जून चबेना कर लेता हूँ। इस जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन मंमट करे।

दुद्धू—इधर-उधर लकड़ियाँ पड़ी हुई हैं बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पर पिसबा लिया था। यहाँ तो बड़ा महंगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं इसलिये तुन्हीं रोटियाँ सेको, मैं बना दूँगा।

भौंगुर—तब भी नो नहीं है ?

लड़के का लालन-पालन किया था। अपना काम कड़ी मुस्ती और परिश्रम से करती थी। उसे निकालने का कोई बहाना नहीं था और व्यर्थ खुचड़ निकालना इन्द्रमणि जैसे भले आदमी के स्वभाव के विरुद्ध था। पर सुखदा इस सम्बन्ध में अपने पति से सहमत न थी, उसे सन्देह था कि दाई हमें लूटे लेती है। जब दाई बाजार से लौटती तो वह ढालान में छिपी रहती कि देखू आटा कहीं छिपाकर तो नहीं रख देती, लकड़ी तो नहीं छिपा देती। उसकी लाई हुई चीजों को घण्टों देखती, पूछ-ताछ करती। चार-चार पूछती, इतना ही क्यों? क्या भाव है? क्या इतना महँगा हो गया? दाई कभी तो इन सन्देहात्मक प्रश्नों का उत्तर नम्रतापूर्वक देती, किन्तु जब कभी बहूनी ज्यादा तेज हो जाती, तो वह भी कड़ी पड़ जाती थी। शपथें ग्वानी। सफाई की शहादतें पेश करती। वाद-विवाद में घण्टों लग जाते थे। प्रायः नित्य यही दशा रहनी थी और प्रतिदिन यह नाटक दाई के अश्रुपात के साथ समाप्त होता था। दाई का इतनी सख्तियाँ मेलकर रहे रहना सुखदा के सन्देह को और भी पुष्ट करता था। उसे कभी विश्वास नहीं होता था कि यह बुढ़िया केवल बच्चे के प्रेमवश पट्टी हुई है। वह बुढ़िया को इतनी बाल-प्रेमशीला नहीं समझती थी।

२

मयंग से एक दिन दाई को बाजार से लौटने में ज़रा देर हो गई। वहाँ दो कुँजडिनों में देवासुर समाप्त मचा था। उनका चित्र

## महातीर्थ

१

मुंशी इन्द्रमणि की आमदनी कम थी और खर्च ज्यादा । अपने बच्चे के लिए दाई रखने का खर्च न उठा सकते थे, लेकिन एक तो बच्चे की सेवा-सुभूषा की फिन्न और दूसरे अपने बराबर वाला से हेंठे बनकर रहने का अपमान इस खर्च को सहने पर मजबूर करता था । बच्चा दाई को बहुत चाहता था, हरदम उसके गले का हार बना रहता था, इसलिए दाई और भी जरूरी मालूम होती थी । पर शायद सब से बड़ा कारण यह था कि वह मुरौवत के बश दाई को जवाब देने का साहस नहीं कर सकते थे । बुढ़िया उन के यहाँ तीन साल से नौकर थी । उसने उनके इकलौते

तुम्हारे बिना वह व्याकुल नहीं हुआ जाना।

दाई ने इम आँखा को मानना आवश्यक नहीं समझा। वहूजी का क्रोध ठंडा करने के लिए इमसे उपयोगी और कोई उपाय न सूझा। उसने रुद्रमणि को इशारे में अपने पास बुलाया। दोनों हाथ फैलाए लड़खड़ाना हुआ उसकी ओर चला। दाई ने उसे गोद में उठा लिया और दरवाजे की तरफ चली। लेकिन सुखदा बाज की तरह झपटी और रुद्र को उसकी गोदी से छीन कर बोली—तुम्हारी यह धूर्त्तता बहुत दिनों में देख रही हूँ। यह तमाशे किमी और को दिखाइए। यहाँ जी भर गया।

दाई रुद्र पर जान देती थी और समझती थी कि सुखदा इम बात को जानती है। उसकी समझ में सुखदा और उसके बीच यह ऐसा मजबूत सम्बन्ध था, जिसे साधारण झटके तोड़ न सके थे। यही कारण था कि सुखदा के कटु वचनों को सुनकर भी दाई यह विश्वास न होता था कि वह मुझे निकालने पर प्रस्तुत है। सुखदा ने यह बातें कुछ ऐसी कठोरता से कहीं और रुद्र को ऐसी निर्दयता से छीन लिया कि दाई से मर्ह न हो सका। बोली—वहूजी मुझसे कोई बड़ा अपराध तो नहीं हुआ, बहुत तो पाप घटे की देर हुई होगी। इमी पर आप इतना विगड रही हैं, तो माफ क्यों नहीं कह देती कि दूसरा दरवाजा देखो। नारायण ने पैदा किया है तो खाने को भी देगा। मजदूरी का अकाल थोड़े ही है।

सुखदा ने कहा—तो यहाँ तुम्हारी परवाह ही कौन करता है

मय हाव-भाव, उनका ज्ञानेय तर्क-वितर्क, उनके शब्दों और व्यङ्ग्य मन्त्र अनुपम थे। विषय के दो नदों के या ज्वालानों के दो पर्वतों, जो दोनों तरफ से उमड़कर आपस में टकरा गये थे! वाक्य का क्या प्रभाव था, जैसी विवेक विवेचना! उनका शब्द-बाहुल्य, उनकी मार्मिक विचारशीलता, उनके अलंकरण शब्द-विन्यास और उनकी उपमाओं की नवीनता पर ऐसा कौन सा कवि है, जो सुध न हो जाता। उनका धैर्य, उनकी शान्ति विस्मयजनक थी। दर्शकों की एक न्दानो भीड़ लगी थी। वह लाज को भी लज्जित करने वाले हुए, वे अगली शब्द जिनसे मलिनता के भी ज्ञान खड़े होने, मैकड़ों रसिकताओं के लिए मनोरंजन की नानाश्री देने हुए थे।

गहरे भी गहरे हो गई कि वेतूँ क्या मानला है। नानाशा इनना मनोरंजन था कि उने समय का विलकुल ध्यान न रहा। एकाएक जब नौ के घंटे की आवाज कान में आई तो चौंक पड़ी और लपकी हुई धर की ओर चली

सुबह भरी बैठी थी गहरे को इतना हो त्योंरी बदलकर दोनो- -क्या वाजार में खो गई थी

गहरे विनयपूर्ण भवम दोनो एक नान-पञ्चम की मधुरी से भेट हो गई वह जान करन लगी

सुबह इस जगह से खंडर में बिटकर दोनो प्रतां एक नर जान को डर हो रहा है और दुर्लभ मीर-संगठों की मूकता है।

परन्तु गहरे ने उने समय उने ही म श्रुत समझी दब्बे की गोद में लेन चली, पर सुबह न भिडककर कड़ा रहन दो,

के लिए तड़प रहा था। जी चाहता था कि एक बार पावन को लेकर प्यार कर लूँ; पर यह अभिलाषा जिनके ही वशे पर मेरे जेब निकलना पड़ा।

रुद्रमणि दाई के पीढ़े-पीढ़े दरवाजे तक आया, पर दाई ने जेब दरवाजा बाहर से धन्द कर दिया, तो वह मन्त्रल कर जमीन पर लोट गया और अन्ना-अन्ना कह कर रोने लगा। सुन्दराने पुनः प्यार किया, गोद में लेने की कोशिश की, मिठाई देने का लान्द्र दिया, मेला दिखाने का वादा किया, इमस जब काम न चला तो वन्दर, मिपाही, लून् लू और होआ की धमकी दी। पर रुद्र ने य रौद्र भाव धारण किया कि किसी तरह चुप न हुआ। यहाँ तक कि सुखदा को क्रोध आ गया, बगे हो नहीं छोड़ दिया और आकर घर के धन्दे में लग गई। रोते रोते रुद्र का मुँह पौर गां लाल हो गये, आँखें सूज गईं। निदान वह वहीं जमीन पर सिमकते-सिमकते सो गया।

सुखदा ने समझा था कि ब्रजा थोड़ी देर में रो-धोकर चुप हो जायगा, पर रुद्र ने ज गते ही अन्ना की रट लगाई। तीन क इन्द्रमणि दस्तर से आये और ब्रज की यह दशा देखी तो क की तरफ कुपित नेत्रों से देख कर उस गोद में उठा लिया और बहलाने लगे। जब अन्त में रुद्र को यह विश्वास हो गया कि दाई मिठाई लेने गई है तो उसे कुछ सन्तोष हुआ।

परन्तु शाम होते ही बसने फिर मौखना शुरू किया—अन्न मिठाई ला।

पुकारो-जैसी लौहिनें गली-गली ठोकरे खाती फिरती हैं !

दाई ने जवाब दिया—हाँ, नारायण आप को कुशल से रखें। लौहिनें और दाइयाँ आपको बहुत मिलेगी। मुझ से जो कुछ अपराध हुआ हो, क्षमा क्जीएगा। मैं जाती हूँ।

सुखदा—जाकर मरदाने में अपना हिसाब साफ़ कर लो।

दाई—मेरी तरफ से रुद्र बाबू को मिठाइयाँ मँगवा दीजिएगा।

इतने में इन्द्रमणि भी बाहर से आ गये। पूछा—क्या है क्या ?

दाई ने कहा—कुछ नहीं। बहू जी ने जवाब दे दिया है, घर जाना हूँ।

इन्द्रमणि गृहस्थी के जंजाल से इस तरह बचते थे, जैसे कोई नंगे पैरवाला मनुष्य काँटों से बचे। उन्हें सारे दिन एक ही जगह चढ़े रहना मजूर था, पर काँटों में पैर रखने की हिम्मत न थी। निव्र होकर बोले—बान क्या हुई ?

सुखदा ने कहा—कुछ नहीं। अपनी इच्छा। नहीं जी चाहना, नहीं रखते। किसी क हाथों वि३ तो नहीं गये

इन्द्रमणि न मुँहना कर कहा—तुम्हें बैठे-बैठे एक-न एक चुचुड मुन्नती ही रहनी है।

सुखदा ने निकर कर कहा—हा सुभ तो इसका रोग है। क्या कहे स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हें यह बहुत प्यारी है तो ले जाकर गले में बांध लो। मेरे यहाँ जहरत नहीं

दाई घर से निकली तो आँखें हड़हड़ाई हुई थीं। हृदय रुद्रमणि



गया। वह बालक जिसे गोद में उठाते ही नरमी, गरमी और भारीपन का अनुभव होता था, अब सूखकर काटा हो गया था। सुखदा अपने बच्चे की यह दशा देखकर भीतर-ही-भीतर कुढ़ती और अपनी मूर्खता पर पछताती। इन्द्रमणि, जो शान्तिप्रिय आदमी थे, अब बालक को गोद से अलग न करते थे, उसे रोज़ अपने साथ हवा खिलाने ले जाते थे, उसके लिये नित्य नये खिलौने लाते थे। पर वह मुर्झाया हुआ पौधा किसी तरह भी न बनपता था। दाई उसके लिये संसार का सूर्य थी। उस स्वाभाविक गर्मी और प्रकाश से वंचित रहकर हरियाली की बहार कैसे दिखाता? दाई के बिना उसे अब चारों ओर अँधेरा और सन्नाटा दिखाई देता था। दूसरी अन्ना तीसरे ही दिन रग ली गई थी, पर रुद्र उसकी सूरत देखते ही मुँह छिपा लेता था मानो वह कोई डाइन या चुड़ैल है।

प्रत्यक्ष रूप में दाई को न देख कर रुद्र अब उसकी कल्पना में मग्न रहता। वहाँ उसकी अन्ना चलती फिरती दिखाई देती थी। उसका वही गोद थी, वही स्नेह, वही प्यारी-प्यारी बातें, वही प्यारे गाने, वही मजेदार मिठाइयाँ, वही सुहावना संसार, वही आनन्दमय जीवन। अबले बैठ कर कल्पित अन्ना से बातें करता—अन्ना, कुत्ता भूक। अन्ना गाय दूध देती। अन्ना, उजला-उजला धोड़ा दौड़े। सवेरा होते ही लोटा लेकर दाई की कोठरी में जाता और कहता, अन्ना, पानी। दूध का गिलास लेकर उसकी कोठरी में रख आता और कहता, अन्ना दूध पिला। अपनी चारपाई पर तकिया रखकर चादर से ढाँक बना और कहता, अन्ना सोती है। सुखदा

इस तरह दो तीन दिन चीत गये । रुद्र को अन्ना की रट लगाने और रोने के सिवा और कोई काम न था । वह शान्त प्रकृति कुत्ता जो उमकी गोद से एक क्षण के लिए भी न उतरता था, वह मौन व्रतधारी बिल्ली जिसे ताख पर देख कर वह खुशी से फूला न समाता था, वह पंखहीन चिडिया जिस पर वह जान देता था, सब उमके चित्त से उतर गये । वह उनकी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखता । अन्ना-जैसी जीती जागती प्यार करने वाली, गोद में लेकर घुमाने वाली, धपक-धपक कर सुलाने वाली, गा-गाकर खुश करने वाली चीज का स्थान इन निर्जीव चीजों से पूरा न हो सकता था । वह अरुमर सोते-सोते चौक पडता और अन्ना-अन्ना पुकार कर हाथों से इशारा करता, मानो उसे बुला रहा हो । अन्ना की खाली कोठरी में घण्टों बैठा रहता । उसे आशा होनी कि अन्ना यहाँ आनी होगी इस कोठरी का दरवाजा खुलते सुनता तो 'अन्ना' 'अन्न' कह कर दौडता । ममकता क अन्ना आ गई । उमका भर 'हअ' शरीर धुन गया गुलाब-जैमा चेहरा सूख गया माँ और बाप उमकी माहनी हैंनी क लिये नरम कर रह जन थ । यदि बहुत गुदगुद न या छेडन न हैंमना भी तो ऐसा जान पडना था कि दिल न नही हैंमना जबल दिल रखने क लिये हैंस रहा हें उम अब दृष ने प्रेम नहा था न मिथी से, न मेवे से न मीठे विस्कृत से न ताजी इमरतियों से उनम मजा तब था, जब अन्ना अपन हाथों में गिलानी थी अब उनमे मजा नहीं था । दो साल का लहलहाना हुआ सुन्दर पौधा मुर्त

इन्द्रमणि ने काली घटाओं की प्योर देग्य कर रुवाई से जव  
दिया—बड़े हकीम नहीं, धन्वनरि भी आवे, तो भी उमे गों  
'फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किमी की दवा ही न होगी ?

इन्द्रमणि—बस, उमकी एक ही दवा है और वह अल्प्य है।

सुखदा—तुन्हें तो बस, वही धुन सवार है । क्या बुडिंग  
आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुन्हारे लिए चाहे बिप हो; पर लडक उमि  
अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेच्छा उमक अधीन है ?

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तक नहीं समझी,  
तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो क्या अशुभ मुँह से निकालत हा ?  
यदि ऐसी-ही जली-कटी मुनाना है, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हन्या तुन्हारी  
ही र्जन पर होगी । यदि लडक को तन्दुरुस्त देखना चाहना हो  
तो उमी दाई क पान जाओ उमस बिनती आर प्रार्थना करो  
क्षमा माँगो । तुन्हारे बच्चे की जान उमी की दया क अधीन है ।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उमकी आँखों से आँसू  
जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ ?

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।

जब राने बैठनी तो कटोरे उठा-उठा कर अन्ना की कोठगी में ले जाता और कहता, अन्ना राना रानागी । अन्ना अब उसके लिए एक स्वर्ग की वस्तु थी, जिसके लौटने की अब उसे बिलकुल आशा नहीं । रुद्र के स्वभावसे धीरे-धीरे वालकों की चपलता और सजीवता की जगह एक निराशा जनक धैर्य, एक आनन्द-बिहीन शिथिलता दिव्याई देने लगी । इस तरह तीन हफ्ते गुजर गये । बरसात का मौसम था । कभी बेंचें करने वाली गर्मी, कभी हवा के ठण्डे झोके । दुखार और जुकाम का जोर था । रुद्र की दुर्बलता इस ऋतु-परिवर्तन को बर्दाश्त न कर सकी । सुखदा उसे फलालेन का कुर्ता पहनाये रखती । उसे पानी के पास नहीं जाने देती । लंगे पैर एक कदम नहीं चलने देती पर सड़ी लग ही गई । रुद्र को खासी और दुखार आने लगा

४

प्रभात का समय था रुद्र चारपाई पर आँखे बन्द किये पड़ा था डाक्टरों का इलाज निष्फल हुआ । सुखदा चारपाई पर बैठी उसकी हार्नीम नेल की मालिश कर रही थी और इन्द्रमणि विशद-मूर्ति बन हुए करुणा-परा आँखों से बच्च को देख रह थे । इधर सुखदा से वह बहुत कम बोलत थे उन्हें उससे एक तरह की चिड-नी हा गई थी वह रुद्र की इस बामरी का एक मात्र कारण उन्ना का समझत थे, वह उनकी दृष्टि में बहुत नीच स्वभाव की स्त्री थी सुखदा न डरत-डरत कहा, आज बड़े हकीम साहब को बुला लाते । शायद उनकी दवा से फायदा हो ।

इन्द्रमणि ने काली घटाओं की ओर देग कर कराई में ज्वर दिया—बड़े हकीम नहीं, धन्वनरि भी आवे, तो भी उसे को फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की दवा ही न होगी ?

इन्द्रमणि—बस, इसकी एक ही दवा है और वह अलम्ब्य है ।

सुखदा—तुम्हें तो बस, वही धुन मवार है । क्या बुद्धि आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहें विष हो, पर लडके के लिए अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेन्द्रा उसके अधीन है !

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तक नहीं समझा तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह से निकालत हो । यदि ऐसी-ही जली-पटी मनुना हं, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही गर्दन पर होगी । यदि लडके को तन्दुरुस्त देखना चाहती हो, तो उसी दाई के पास जाओ, उससे विनती और प्रार्थना करो क्षमा माँगो । तुम्हारे बच्चे की जान उसी की दया के अधीन है ।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ ?

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।

इन्द्रमणि - नारां नमो करो । मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है । न जाने तुम्हारी जमान में क्या निरुता पड़े कि जो वह प्यारी भी हो, नो न जाये ।

सुखदा ने पनि दी और फिर निरुकार ही दृष्टिसे देखा और बोली— हाँ, और क्या मुझे अपने बन्धे की बीमारी का मोरु थोड़े ही है । मैंने लाज से मारे तुम से दता नहीं, पर मेरे हृदय में यह दान बार-बार उठी है । यदि मुझे दास के सतान का पना मान्नुम होना, तो मैं कभी भी उसे बना लाई होती । वड मुझ से किनती ही नागल हो, पर रुद्र से उसे प्रेम था । आज ही उनके पास जाऊँगी । तुम बिनती करने को रहते हो, मैं उनके पैरों पड़ने के लिए तैयार हूँ । उनके पैरों को प्रासुओं से भिगोऊँगी और जिस तरह राजी होगी राजी करूँगी ।

सुखदा ने बहुत धैर्य धर कर यह बाने कही, परन्तु उनडे हुए आसू अब न रुक सक इन्द्रमणि ने स्त्री को और महानुभूति-पूर्वक देखा और लज्जित हो बाले मैं तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता मैं त्वद हा नता हं

५

केलामी समार में अकला था किना समय उसका पारवार गुलाब की तरह फुल हुआ था परन्तु पीर-पीर उसकी सब पानियां गिर गई । उसकी सब हरियाली नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और अब बहा एक सूखी हुई टहनी उस हर-भर पड का चिह्न रह गई थी ।

परन्तु रुद्र को पाकर इस सृष्टी हुई टहनी में जान पड गई

इन्द्रमणि ने काली पटापों की ओर देग कर जगाई न कर दिया—बड़े हकीम नहीं, धन्तनरि भी आपे, तो भी उसे भी फायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की टना ही न होगी ?

इन्द्रमणि—बस, उसकी एक ही टना है और वह अल्प है ।

सुखदा—तुम्हें तो बस, बड़ी धुन मवार है । क्या बुद्धि आकर अमृत पिला देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहें विष हो, पर लडक = नि अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि ईश्वरेंद्रा उसक अधीन है ।

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तरु नहीं समझ तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह में निकालत हो । यदि ऐसी-ही जली-कटी सुनाना है, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही देन पर होगी । यदि लडक को नन्दुकम्न देखना चाहता हो तो उसी दाई के पास जाओ, उसमें विनती आर प्रार्थना करो क्षमा माँगो । तुम्हारे बच्चे की जान उसी की दया के अधीन है ।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ ?

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।





इन्द्रमणि ने काली घटाओं की थोर देग कर मगाई से वा दिया—बड़े हकीम नहीं, भन्वनरि भी थावे, तो भी उमे को कायदा न होगा ।

सुखदा ने कहा—तो क्या अब किसी की दवा ही न होगी

इन्द्रमणि—बस, इसकी एक ही दवा है और वह यत्न्य है

सुखदा—तुम्हें तो बस, वही भुन गवार है । क्या कुछ

आकर अमृत पिना देगी ?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिए चाहे विष हो, पर लडक रुनि अमृत ही होगी ।

सुखदा—मैं नहीं समझती कि डेवरेन्द्रा उसक अधीन है

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अब तरु नहीं ममते तो रोओगी । बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा ।

सुखदा—चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह स निकालत हो यदि ऐसी-ही जली-रटी मनुना ह, तो बाहर चले जाओ ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाना हूँ पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही र्दन पर होगी । यदि लडक को नन्दुरुम्न देखना चाहता है तो—मी दाटे क पाम जाओ, उसस विनती आर प्रार्थना करे

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसकी आँखों से आँसू जारी थे ।

इन्द्रमणि ने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ

सुखदा—तुम क्यों जाओगे, मैं आप चली जाऊँगी ।



थी। इसमें हरी-हरी पत्तियाँ निकल आई थीं। वह जीव, जो अब तक नीरम और मृदु था, अब गरम और मजबूत हो गया। अंधरे जंगल में भटकते हुए पशु तो प्रकृत की मदद करने लगी थी। अब उसका जीवन निर्गम नहीं, बल्कि मार्गदर्शक हो गया था।

कैलासी रुद्र-की भोली-भोली बातों पर निश्चय हो गईं। वह अपना स्नेह मुखड़ा में छिपानी थी। इसलिए कि माँ के दृष्ट में द्वेष न हो। वह रुद्र के लिए माँ से छिपकर मिठाइयाँ लाती और उसे खिलाकर प्रसन्न होती। वह दिन में दो-न न बार उसे उभर मलती कि बच्चा मृत्यु पुष्ट हो। वह दूमरों के सामने उसे कोड़े चेंक नहीं खिलानी कि उसे नजर लग जायगी। मदा वह दूमरों से बच्चे के अल्पाहार का रोना रोया करती। उसे चुगी नजर से बच्चे के लिए तारीज़ और गड़े लानी रहती। वह उसका विगुद प्रेम था। उसमें स्वाधे की गन्ध भी न थी।

उस घर में निकलकर आज कैलासी की वह दशा थी, जो थियेटर में एकाएक चिन्ली क लेम्पो क वृक्त ज्ञाने से दर्शकों की होती है। उसका सामन बड़ी मृगन नाच रही थी। कानों में बड़ी प्यारी-प्यारी बाने गूँज रही थीं। उसे अपना घर काटे न्वाना था। उस कालकोठरी में दम घुटा जाना था।

गत ज्यो-त्यो कर कटी। सुबह को वह घर में म्हाई लगा रखी थी। एकाएक बाहर नाजे हलुव की आवाज सुनकर बड़ी फुर्ती से घर से बाहर निकल आई। तब तक याद आ गया, आज हलुव



यात्रा का समय आ गया। माल्ले के कुछ लोग यात्रा ही कर-  
गियाँ करने लगे। कैलासी की दगा इस समय उस पालतू विडक  
की-सी थी, जो पिंजड़ में निरलकर फिर किमी कौने की लोत्र में  
हो। उसे विन्मृति का यह अच्छा अवसर मिल गया, यात्रा के  
लिए तैयार हो गई।

६

आसमान पर काली घटाएँ छाड़े हुई थीं और हल्की-हल्की  
फुहारें पड़ रही थीं। दहली स्टेशन पर यात्रियों की भीड़ थी। कुछ  
गाड़ियों पर बैठे थे, कुछ अपने घरवालों में विदा हो रहे थे। बगैरे  
नरफ़ एक हलचल-सी मची थी। संसार-माया आज भी उन्हें  
जकड़े हुए थी। कोई स्त्री को माचवान कर रहा था कि घात कर  
जावे तो नालाबवाने खेत में मटर बो देना और बाग के पास  
गंहूँ। कोई अपने जवान लडके को समझा रहा था—अमानिनी  
पर बकाया लगान की नालिज करने में डर न करना और दो लड़के  
में कड़ा मटर जरूर काट लेना। एक बृद्ध व्यापारी महाशय अपने  
मुनीम में कह रहे थे कि माल आने में देर हो, तो खुद चले जाए-  
येगा, और चलतू माल ली चियेगा नहीं तो रुपया फँस जायगा।  
पर कोई-कोई ऐसे श्रद्धानु मनुष्य भी थे जो ध्यानमग्न दिखाई देते  
थे। वे या तो चुपचाप आसमान की ओर निहार रहे थे, या माल  
फेरने में तल्लीन थे। कैलासी भी एक गाड़ी में घेंठी मोच रही थी-  
इन भले आदमियों को अब भी संसार की चिन्ता नहीं छोड़ती।  
वही वनिज-व्यापार, वही लेन-देन की चर्चा। रुद्र इस समय



अब एक दृष्टे से खांसी और बुखार में पड़ा है । मर्ग करके हार गया, कुछ फायदा नहीं हुआ । मैंने सोचा था कि कर तुम्हारी अनुनय-विनय करके लिया आऊँगा । क्या उम्मेदें देकर उसकी उद्योगन मैं बन जाऊँ, पर तुम्हारे घर गब-मान्नुम हुआ कि तुम यात्रा करने जा रही हो । अब किन कुँ चलने को कहूँ । तुम्हारे साथ मन्तूऊ ही कौन-सा अच्छा नि जो इतना माहम करूँ । फिर पुरय-कार्य में दिन्न हानने का हर है । जाओ, उसका ईश्वर मानिक है । आयु जेप है तो जायगा । अन्यथा ईश्वरीय गति में किसी का क्या बग !

कैलासी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया । मानने चीनें तैरती हुई मान्नुम होने लगीं । हृदय भावी अन्नुम की अन्ने में दहल गया । हृदय से निकल पडा—या ईश्वर, मेरे न्ने बाल वाका न हो । प्रेम ने गला भर आया । विचार किया कि केंसी कटोरहृदया हूँ । प्याग बचा रो-रोकर हनकान हो गया मैं उसे दग्वन तक नहीं गई । मुन्वदा का न्वभाव अच्छा नहीं, किन्तु न्ने न मेरा क्या विगाडा था कि मैंने माँ का बंटे से लिया । ईश्वर मेरा अपराध जमा कर । प्याग न्ने लिये हुडक रहा है ( इस स्थान में कैलासी का कलेजा न्ने उठा था और आँखा में आँसु बह निकले थे ) मुझे क्या साधुन कि उन मुन्ने इतना प्रन है नहीं मान्नुम बचे को क्या दगा है भयातुर हो बोली—दूध तो पीने हैं न ?

इन्द्रमणि—तुम दूध पीने का कहनी हो, उमने तो दो दिन





कैलासी को ज़रा ढाढ़स हुआ। घर में पैठी, तो देखा कि नई दाई पुलटिस पका रही है ? हृदय में बल का संचार हुआ। सुखदा के कमरे में गई, तो उसका हृदय गर्मी के मध्याह्नकाल के सदृश काँप रहा था। सुखदा रुद्र को गोद में लिये दरवाजे की ओर एकटक ताक रही थी। वह शोक और करुणा की मूर्ति बनी हुई थी।

कैलासी ने सुखदा से कुछ नहीं पूछा। रुद्र को उसकी गोद से ले लिया और उसकी तरफ सजल नयनों से देख कर कहा—बेटा रुद्र ! आँखे खोलो ।

रुद्र ने आँखे खोलीं। क्षणभर दाई को चुपचाप देखता रहा और तब एकाएक दाई के गले से लिपट कर बोला—अन्ना आई ! अन्ना आई ॥

रुद्र का पीला, मुर्झाया हुआ चेहरा ग्विल उठा, जैसे बुझते हुए दीपक में तेल पड़ जाय। ऐसा मालूम हुआ मानो यह कुछ बढ़ गया हो।

एक हफ्ता बीत गया। प्रातःकाल का समय था। रुद्र आँगन में खेल रहा था। इन्द्रमणि ने बाहर से आकर उसे गोद में उठा लिया और प्यार से बोले—तुम्हारी अन्ना को मार कर भगा दे।

रुद्र ने मुँह बना कर कहा—नहीं, रोयेगी।

कैलामी बोली—क्यों बेटा, तुमने तो मुझे बट्टीनाथ नहीं जाने दिया। मेरी यात्रा का पुण्य फल कौन देगा ?

इन्द्रमणि ने मुस्कुराकर कहा—तुम्हें उनसे कहीं अधिक पुण्य हो गया। यह तीर्थ,

महान्तीर्थ है ।



कैलासी को जरा ढाढ़स हुआ। घर में  
पुलटिस पका रही है ? हृदय में बल  
कमरे में गई, तो उसका हृदय गर्मी  
रहा था। सुखदा रुद्र को गोद में  
ताक रही थी। वह शोक और

कैलासी ने सुखदा से कुछ  
ले लिया और उसकी तरफ  
रुद्र ! आँखें खोलो ।

रुद्र ने आँखें खोलो ।  
और तब एकाएक दाई के  
अन्ना आई !!

रुद्र का पीला, मुर्झाया  
द्वीपरु में तेल पड़ जाय । ऐम्  
एक हफ्ता बीत गया । प्र  
में खल रहा था । इन्द्रमणि ने  
लिया बार प्यार से बोले—तुम्हें

रुद्र ने मुँह बना कर कहा—  
कैलासी बानी - क्या बेटा, तुम  
दिया । मरी यत्रा का पुरख फल कौन  
इन्द्रमणि ने मुम्कुराकर कहा—तुम्हें  
हा गया । यह तीर्थ

महातार्थ है !



सुगा-भर के लिए अनुगम ने दवा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उलटे पाँव लौटा और यह कह कर बाहर चला गया कि सारन्धा, तुमने मुझे मर्दव के लिए मचेत कर दिया। यह बात मुझे कभी न भूलेगी।

श्रद्धेरी रात थी। आकाश-मण्डल में तारों का प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किले से बाहर निकला। पलभर में नदी के उस पार जा पहुँचा, और फिर अन्धकार में लुप्त हो गया। जीतना उसके पीछे-पीछे किले की दीवार तक आई, मगर जब अनिरुद्ध छलांग मारकर बाहर कूद पड़ा, तो वह विरहिणी एक चट्टान पर बैठकर रोने लगी।

इतने में सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। जीतना ने नागिन की तरह बल खाकर कहा—मर्यादा इनकी प्यारी है ?

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होना तो इन्द्र में छिपा लेनी।

सारन्धा—न, डाली में लुगी चुभा दनी।

शीतला न ऐठकर कहा—डाली में छिपाता फिरोगी, मेरी बात गिरह में बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन एसा हागा मे भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध मद्रौत को जीतकर लौटा और साल-भर पीछे सारन्धा का विवाह ओरछा के राजा चम्पतराय से हो गया। मगर उस दिन की बातें दोनों सड़ि-



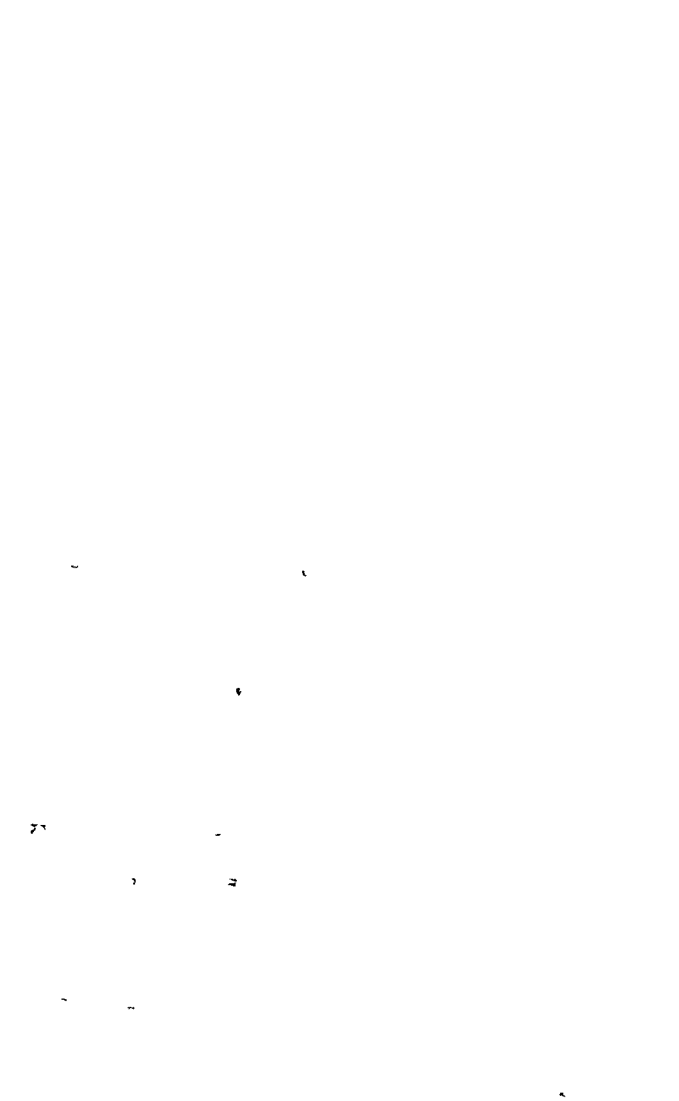
लाग्य थी। यह पहला अमरग था कि चम्पतराय को आगे-दिन के लडाई-झगड़ों से निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलास का प्रावल्य हुआ। रात-दिन आमोद-प्रमोद की चर्चा रहने लगी। राजा विलास में रूचे, रानियाँ जडाऊ गहनों पर रीझीं। मगर मारन्या इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती। वह इन रंगरतियों से दूर-दूर रहती। ये नृत्य और गान की मन्त्र उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतराय ने मारन्या से कहा—सागन, तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज हो ?

मारन्या की आँखों में जन भर आया। बोली—नाथ ! आप ऐसा विचार क्यों करते हैं ? नहीं आप प्रसन्न हैं, वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय - मैं जब स यहाँ आया हूँ मैंने तुम्हारे मुख-कमल पर कभी मनोहासिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे ब्रीडा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं मचाये। कहीं प्रेम-लता सुरभान तो नहीं लगी ?

मारन्या—प्राणनाथ ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं, जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थ स इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर एक बोझ-मा हृदय पर धरा रहता है।





४

माँ अपने खोये हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछा के भाग जागे। नौवतें फड़ने लगीं और फिर सारन्या के नेत्र-कमलों में जातीय अभिमान का आभास दिखलाई देने लगा।

यहाँ रहते कई महीने बीत गये। इसी महीने में शाहजादा बीमार पड़ा। शाहजादाओं में पहले से ईर्ष्या की अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दर सजा कर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-धिरंगे रूप भरकर अपने सौन्दर्य को दिखानी थी।

मुराद और मुहीउद्दीन (औरंगजेब) उमंगों से भरे हुए कदम बढ़ाते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुर के निकट, चम्बल के तट पर आ पहुँचे, परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहजादे अब बड़ी चिन्ता में पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थी, लोभ में भी अधिक विस्मय वाली। घाट पर लोंहे की दीवार खड़ी थी, किमी योगी के त्याग के मद्दश सुन्दर। विवर होकर उन्होंने चम्पतराय के पास मद्दशा भेजा कि खुदा के लिए आकर हमारी इयती हुई नाव को पार लगाइए।

राजा ने भवन में जाकर सारन्या से पूछा—इसका क्या उत्तर दें।

चम्पतराय स्वयं आनन्द से मग्न थे । इसलिए उनके विचार में नारन्या के अनन्तुष्ट रहने का कोई उचित कारण नहीं हो सकता था । वह भौंठे मिन्डोड़रर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहने का कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता । ओरछे में कौन-सा सुख था, जो यहाँ नहीं है ?

नारन्या का चेहरा लाल हो गया । बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं, शोक से कहो ।

नारन्या—ओरछा में मैं एक राजा की रानी थी, यहाँ मैं एक जागीरदार की चेरी हूँ । ओरछा में मैं वह थी, जो अवध में कौशल्या थी । परन्तु यहाँ मैं बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ । जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते हैं, वह कल तक आपके नाम से काँपता था । रानी से चेरी होकर भी प्रमन्न-चित्त होना मेरे वश में नहीं है । आपने यह पद और ये विलास की नामधियाँ बड़े मँदगे दामों में मोल ली हैं ।

चम्पतराय के नत्रों से एक पर्दा-मा हट गया । वे अब तक नारन्या की आन्तिक उच्चता को न जानते थे । जैसे वे-मा-बाप का बालक माँ की चचा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछा की याद से चम्पतराय की आँखें मजन्न हो गईं । उन्होंने आदर-युक्त अनुराग के साथ नारन्या को हृदय में लगा लिया ।

आज से उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्ती की फिक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाएँ उन्हें यहाँ खींच लाई थीं ।

शिकोह को भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाट से नदी उतर  
 चाहता है। उन्होंने घाट पर से मोर्चे हटा लिये। घाट में बैठे हुए  
 बुन्देलों उसी ताक में थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरन्त ही  
 नदी में घोड़े डाल दिये। चम्पतराय ने शाहजादा दाराशिकोह को  
 भूतनाम देकर अपनी फौज घुमा दी और वह बुन्देलों के पीछे  
 चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चाल में मात्र  
 चम्पतराय निरन्तर हुआ, परन्तु चाकर देखा तो वहाँ मात्र  
 क. . . . . की लार्थ फटक रही थी।

राजा को इनके ही बुद्धियों की हिम्मत बंध गई। शाहजाद  
 को यही न थी 'महाराज-राज' की ध्वनिक साथ धारा किता  
 में . . . . . की पंक्तियाँ दिन-दिना  
 में . . . . . शाम हो गई।  
 . . . . . और आकाश में अंधेरा हुआ।  
 . . . . . शाहजादों की  
 . . . . . बुद्धियों की एक लहर  
 . . . . . की पृथ्व पर टकराई।  
 . . . . . मानस गया।  
 . . . . . म आ गई।  
 . . . . . क फीस।  
 . . . . . पर, जब राजा चम्पतराय  
 . . . . . चम्पतराय  
 . . . . .









दिल्ली की संसद-सभा में विचार-धारा बनाना है, तथापि पात्र चयनी  
 तब विचार में थी परंतु गौरवपूर्ण होती है। अतः वह अनुभवशील  
 सेनापति राष्ट्र की नींव बनाता है। तो यह ध्यान पर जान देनेवाला,  
 वह देश न सोचने वाला निराली राष्ट्र के भागों को उद्यम करता है।  
 इसे कार्यक्षेत्र में लाते सकलता न हो, किन्तु जब किसी भाषणा या  
 सभा में वक्तव्य नाम ध्यान पर आ जाता है, तो श्रीनागणा एक  
 स्वर में चमक, पीरि-गौरव को प्रतिबन्धित कर देते हैं। सारन्ध्या  
 इन्हीं 'ध्यान पर जान देनेवालों' में थी।

शाहजादा मुहीउद्दीन परखल के विचारों से आगरे की ओर  
 चला, तो सौभाग्य उसके सिर पर खैबर हिलाना था। जब वह  
 आगरे पहुँचा, तो विजयदेवी ने उसका लिए सिंहासन सजा दिया।

आगराजैव गुगात या चमक बादशाही सरदारों के अपराध  
 क्षमा कर दिये। उनका राज्य-पद लाटा लिये आगरा राजा चम्पतराय  
 को उसका बहुमूल्य स्वरूप व वस्त्र-समय पर हजारी मनमव'  
 प्रदान किया। आगरा में चमक ने आगरा प्रखल से यमुना तक  
 उसकी जागीर नियत की। यह उस राजा पर स राज्य-सर्वक  
 बना वह पुन सुख-वित्तान में पर प्रखरता सारन्ध्या एक बार  
 और परार्थिता के शासक में पुनर्न लगी।

बलीविहादुरियों बड़ा वाक्यचतुर व्यक्ति था। उसकी मृदुलता  
 ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगार का विश्वासपात्र बना दिया।

उस पर राज-सभा में सम्मान का नष्ट पड़न लगी।

सौसाहब के मन में अपने पांडु के हाथ से निकल जान का









बुन्देला बादशाह का मूवेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया और भी कितने ही बुन्देला सरदार राजा से विमुख होकर बादशाही मूवेदार से जा मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयों की नलवारे रक्त से लाल हुई। यद्यपि इस युद्ध में राजा को विजय प्राप्त हुई, लेकिन उनकी शक्ति सदा के लिए चीया ही गई। निकटवर्ती बुन्देला राजा, जो चम्पतराय के बाहु-बल थे, बादशाह के कृपाकाली बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुग लीं। परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी। धीरे-धीरे न छोड़ा। उन्होंने प्रेरणा छोड़ दिया, और तीन वर्ष तक बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्र पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरों की भाँति सारे देश में मँडरा रही थीं। आये-दिन राजा का किमी-न किमी से सामना हो जाता था। मारन्धा मरैव उनका साथ रहती और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी-बड़ा आपत्तियों से भी जब तक भय लुप्त हो जाता -- और आशा साथ छोड़ उनका साहसिक धर्म उसे सन्ताने रहता था। तीन साल के बाद अन्त में बादशाह के मूवेदारों ने आत्मसमर्पण को मजबूत ही कि उस शेर का शिकार आपक निवाय और किमी से न होगा। उत्तर आया कि सत्ता को हटा लो और घेरा उठा लो। राजा ने समझा मूडूट से निकलने हुई पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।



### रानी सारन्धा

सारन्धा—हम लोग यहाँ से निकल जाये तो कैसा ?

राजा—इन अनाथों को छोड़कर ?

सारन्धा—इस समय इन्हे छोड़ देने ही में कुशल है। हम न

होंगे, तो शत्रु इन पर कुछ ब्या अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे। जिन मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण करदी है, उनकी बियों और बच्चों को मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं ? मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लडा दूँगा। उनके लिए बाइशाही सेना की ब्या मदद करूँगा। कारावास की कठिनाइयों में किन्तु इस समय मैं इन्हे छोड़ नहीं सकता।

सारन्धा ने लज्जित होकर फिर भुका निया और सोचने लगी निस्सन्देह अपने पिय सन्धिय से दूर से प्राण से छोड़कर अपनी जान बचाना प्रयत्न कर रही हैं ? लेकिन फिर वह कुछ विचार करके प्राण से छोड़कर आपको विश्राम हो कर विराम दे देगी ? प्रन्याय न किय जायगा ?

राजा सोचकर बाइशाही के विचारों से दूर होकर सारन्धा को बचाने का प्रयत्न करने लगे।



“अब जाओ परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।”

दामोदर चले चला तो रानी ने उसे दृश्य में लगा लिया और तब आश्रम की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधि, मैंने अपना नया और लोभार पुत्र दुन्देलो की प्यास के प्यासे भेट कर दिया। अब इस प्यास को निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो !

८

दूसरे दिन प्रातः काल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की सामग्री लिये मन्दिर ही चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँसुओं-तले आँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिर के द्वार पर पहुँची थी कि उसके थाल में बाहर से आकर एक तीर गिरा। तीर की नोक पर एक कागज का पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धा ने थाल मन्दिर के चबूतरों पर रख दिया और पुर्जे को खोलकर देखा, तो आनन्द से चेहरा खिलता लेकिन यह आनन्द जगाम्भर का मेहमान था। हाथ इस पुर्जा के लिए मैंने अपना सब से प्यारा पुत्र हाथ में खो दिया है। कागज के टुकड़े को इनमें महींगे दामों में और किसने लिया होगा।

मन्दिर से लौटकर सारन्धा राजा चम्पतराय के पास गई और बोली—प्राणनाथ ! आपने जो वचन दिया था उसे पूरा कीजिए।

राजा ने चौंककर पूछा—तुमने अपना वादा पूरा कर लिया ? रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पतराय ने उसे गौरव से देखा, फिर बोले—अब मैं चलूँगा और ईश्वर ने चाहा, तो









कोमल शरीर में हाथ लगायेगे और मैं जगह में हिल भी न सँवूँगा। हाथ ! मृत्यु, तू तब आयेगी। यह करते-उठते उन्हे एक विचार आया। तलवार की तरफ हाथ बढ़ाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्या ने बोले—प्रिये ! तुमने जिनने ही स्वमरो पर मेरी आन निर्भार है।

इतना सुनते ही सारन्या ने सुरभाये हुए मुख पर लाली डोंड गई आँसू मूँच गये। इस आशा ने कि मैं अब भी पति के कुछ काम आ सकती हूँ, उनके हृदय में बल का संचार कर किया। वह राजा की ओर विश्वासोत्पादक भाव से देखकर बोली—ईश्वर ने चाहा, तो मरते दम तक निराहूँगी।

रानी ने समझा राजा मुझे प्राण द देने का संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमन मेरी बात रुभा नहीं टाली।

सारन्या—मरते दम तक न डरूँगी

'यह मेरा अन्तिम वाचन है इस आस्था के तन करना

सारन्या ने तलवार 'तन' कर उन्हे अपने वज्र स्थल पर रख लिया और कहा—यह अस्त्र 'अन' नहीं है मेरा आदिक अभिलाषा है कि मरते ना यह मन्त्रक 'अ' पर चरण-कमला पर हो

चम्पतराय—तुमन मर मनलव तथा समझा क्या तुम मुझ इमलिए शत्रुओं के हाथ में जाडू जाऊँगा कि मे बड़िया पहन हुए दिल्ली की गलियों में निन्दक के पात्र बनें

रानी ने जिज्ञासा-दृष्टि से राजा को देखी। वह उनके मनलव नहीं समझी।















चीर सकता है। एक जग के लिए उसे ऐसी तृप्ति हुई, मानों उसकी सारी अभिलाषाएँ पूरी हो गई हों, मानों वह अब किसी से कुछ नहीं चाहता। जायद शिव को सामने खड़े देखकर भी वह मुँह फेर लेगा, कोई बरदान न माँगेगा। उसे अब किसी श्रद्धे की, किसी पदार्थ की, इच्छा न थी। उसे गर्व हो रहा था, मानों उसमें अधिक सुग्री, उसमें अधिक भाग्यशाली पुरुष संसार में और कोई न होगा।

चिन्ता अभी अपना वाक्य पूरा न कर पाई थी। उसी प्रसंग में बोली हाँ, आपको मेरे कारण अलवत्ता दुम्भड़ याचना भोगनी पड़ी।

रत्रिमिद न उठन की चेष्टा करके कहा—चिन्ता नप के सिद्धि नहीं मिलती।

चिन्ता ने रत्रिमिद का सामल हाथों में लिटाने हुए कहा—इस  
 "यदि मैं तुमसे नपस्या नहीं की थी। भूट क्यों बोलते हो?"  
 "यदि मैं तुमसे नपस्या कर रहा हूँ। यदि मेरी जगह कोई  
 दूसरा भी होता तो भी तुम उठने ही प्राणापणा में उसकी सेवा  
 करते। उसे तुमसे सेवा करने में तुमसे मन्थ कहती हैं, मैं  
 जानती हूँ तुमसे सेवा करने में प्रणा कर लिया था, मैंने  
 तुमसे नपस्या करने में तुमसे मन्थ कहा। मन्थ पालन योंही प्र  
 "यदि मैं तुमसे नपस्या कर रहा हूँ। यदि मेरी जगह कोई  
 दूसरा भी होता तो भी तुम उठने ही प्राणापणा में उसकी सेवा  
 करते। उसे तुमसे सेवा करने में तुमसे मन्थ कहती हैं, मैं  
 जानती हूँ तुमसे सेवा करने में प्रणा कर लिया था, मैंने  
 तुमसे नपस्या करने में तुमसे मन्थ कहा। मन्थ पालन योंही प्र



जी नहीं चाहता !

रत्नसिंह ने इस सरल, अनुरक्त आग्रह से विह्वल होकर चिन्ता को गले लगा लिया, और बोले—मैं सवेरे तक लौट आऊँगा प्रिये !

चिन्ता पति के गले में हाथ डालकर आँखों में आँसू भरे हुए बोली—मुझे भय है, तुम बहुत दिनों में लौटोगे। मेरा मन तुम्हारे साथ रहेगा। जाओ, पर रोज खबर भेजते रहना। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अवसर का विचार करके धावा करना। तुम्हारी आदत है कि शत्रु को देखते ही आकुल हो जाते हो और जान पर खेलकर टूट पड़ते हो। तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि अवसर देखकर काम करना। जाओ, जिस तरह पीठ दिखाते हो, उसी तरह मुँह भी दिखाओ।

चिन्ता का हृदय कानर हो रहा था। वहाँ पहले केवल विजय-लालमा का आधिपत्य था, अब भोग-लालमा की प्रधानता थी। वही वीर-वाला, जा सिहनी की तरह गरज कर शत्रुओं के कलेजे कँपा दनी थी, आज इनकी दुर्बल हो रही थी कि जब रत्नसिंह घोंडे पर सवार हुआ, ना आप उसकी कुशल-कामना से मन-ही-मन देवी की मनोनियाँ कर रही थी। जब तक वह वृद्धों की ओट छिप न गया, वह खड़ी उस देखनी रही। फिर वह किले के मंचे बुर्ज पर चढ़ गई और घण्टा उमी तरफ ताकती रही। शून्य था, पहाड़िया न कभी का रत्नसिंह को अपनी ओट में छिपा लिया था, पर चिन्ता को ऐसा जान पड़ता था कि वह सामने

















चिन्ता पर वज्रपात हो गया। एक क्षण तक समाहन-सी बैठे  
रही। फिर उठकर घबराई हुई सैनिक के पास आई, और आवाज  
स्वर में पूछा—कौन-कौन बचा ?

सैनिक ने कहा—कोई नहीं।

“कोई नहीं !, कोई नहीं !!”

चिन्ता मिर परुड कर भूमि पर बैठ गई। सैनिक ने मि  
कहा—“मरहटं समीप आ पहुँचे।”

“समीप आ पहुँचे ॥”

‘बहुत समीप’

“ना तुरन्त चिन्ता तैयार करो। समय नहीं है।”

“अभी हम लोग तो मिर रुटाने को हाजिर ही हैं।”

“तुम्हारी जैसी इच्छा। मेरे कर्तव्य का तो यहीं अन्त है।

‘किन्ता वन्द करूँ हम मरीनों लड मरने हैं।’

‘ना जाकर लडा। मरी लड डे अब किन्ती नें नहीं।’

एक ओर अन्धकार प्रकाश का पैरो-तले कुचलता चला आया  
था, दूसरा आर विचरों मरहट लहरान हुए खेनो को। और इस  
कितन म विचर वन की या जया ही दीपर जने, चिन्ता में ही  
आग लगी वन चन्त मालडा शृंगार क्रिप अनुपम दर्श  
दिव्याना हृद समर मय अर्ध म ग म पनिलोक की यात्रा अन्त  
ना रही थी



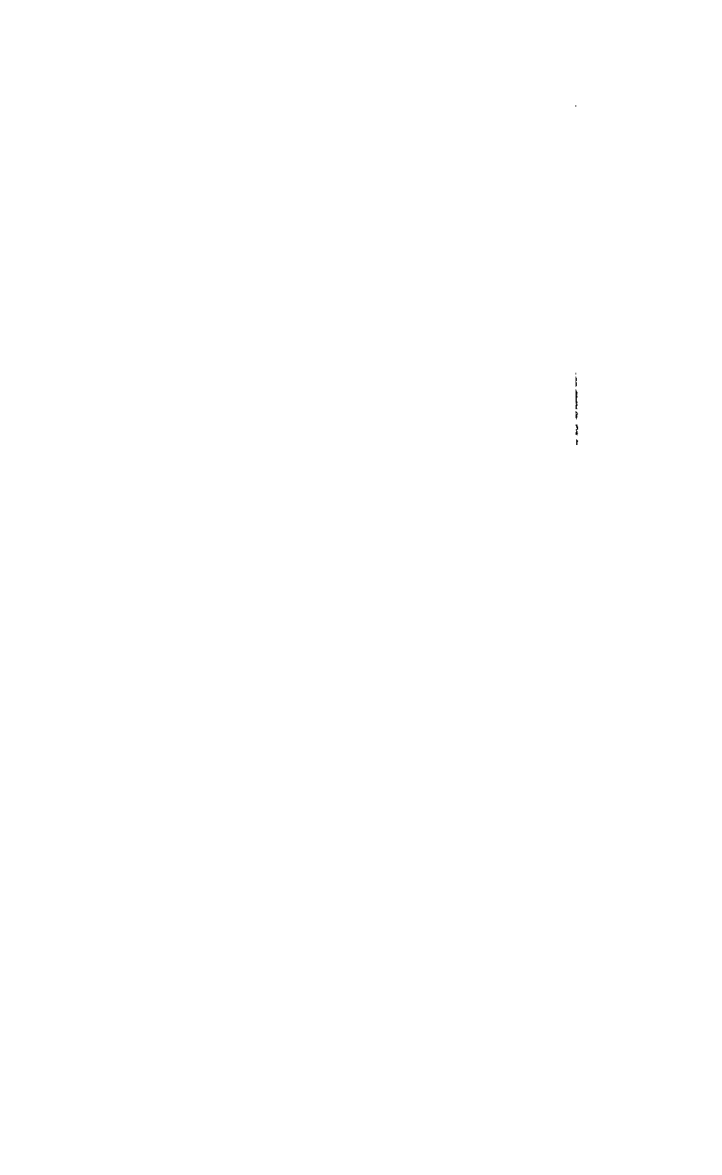
























को अवरुद्ध कंठ में बोला - नहीं, नहीं, जरूरीगत ही रखा करने ही पड़ेगी। आह! ज्ञानिम! न जानना है, मैं जान हूँ? मैं तुम्हें युवक का प्रभागा पिता हूँ, जिगती आज नूने उगी निर्दयता से हत्या ही है। नू जानना है, नूने मुक्त पर किमता बड़ा अन्याय किया है? नूने मेरे गानदान का निशान मिटा दिया है। मेरा विराग गुन कर दिया। आह, जमान मेरा एकलौता बेटा था। मेरी मागी अभिलाषाएँ उसी पर निर्भर थीं। वही मेरी आँसू का उजाला, मुक्त अंधे का नहागा, मेरे जीवन का आधार, मैं जर्जर शरीर का प्राणा था। अभी-अभी उसे कत्र की गोद में लिटाकर आया हूँ। आह, मेरा जंग आज खान के नीचे मो रहा है। ऐसा दिनेर, ऐसा दीनदार ऐसा मज्जीला जवान मेरी कौन नें दृसगा न था। ज्ञानिम तुम्हें इस पर नलवार चलाने जरा भी दम न आई। मेरा पत्थर का रुलेना जरा भी न पसीजा। नू जानता है, मुझे इस वक्त तुम्हें पर किमता गुम्मा आ रहा है? मेरा जी चाहता है कि अपन दोना हाथों में नगी गदन पकड़कर इस तरह दवाई कि नगी जवान बाहर निरुक्त आव नगी आखें कौडियों की तरह बाहर निरुक्त पड़े पर नहा नून मरी शरगा ली है कर्नच मेरे हाथों को बांधे हुए है क्यकि हमार रमूल-पाक ने हिदायत की है कि जो अपनी पनाह म आव उन पर हाथ न उठाओ। न नहीं चाहता कि नवी क हुक्म को नोडकर दुनिया के साथ अपनी आक्यत भी विगाड लूँ। दुनिया नूने विगाडी, दीन अपने हाथे विगाडूँ? नहीं। मत्र करना मुष्किल है, पर सत्र करूँगा।



के-कच्चीले मर मिटने से, शत्रु-के शत्रु बीगान हो जाते थे। प्रवृत्ति पर विजय पाना, जेम्स हसन को अमान्य-सा प्रतीत हो गया। बार-बार प्यारे पुत्र की मृत्यु उसकी आँसुओं के आगे फिर लगनी थी, बार-बार उसके मन में प्रयत्न उनेटना होती थी वह चलकर डाऊड के मूल से अपने कोर की आग बुझाई। अरब वीर होते थे। काटना-मारना उनके लिए कोई आमायाग्य बन नहीं। मरनेवालों के लिए वे आँसुओं की टुट्टू बूँदें बहाकर फिर अपने काम में प्रवृत्त हो जाते थे। वे मृत व्यक्ति की स्मृति को केवल उमी दशा में जीवित रखते थे, जब उस के मूल क बदला लेना होना था। अन्न को जेम्स हसन अधीर हो उठा। उसको भय हुआ कि अब मैं अपने ऊपर कायू नहीं रख सकता। उसने तलवार म्यान में निकाल ली और दबे पाँव उस छोटी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया जिसमें डाऊड छिपा हुआ था। तलवार को दामन में छिपाकर उसने वीर में द्वार खोला। डाऊड टहल रहा था। बड़े अरब का गद्गद रूप देखकर डाऊड उसके मनोवेग को ताड गया। उसे बड़े में महानुभूति हो गई। उसने सोचा, यह धम का दोष नहीं। मेरे पुत्र की किमी ने हत्या की होती, तो कदाचित् मैं भी उसके मूल का प्यासा हो जाता। यह मानव-प्रकृति है।

अरब ने कहा—डाऊड, तुम्हें मालूम है, बंटे की मौत का कितना एम होता है ?

डाऊड—इसका अनुभव तो नहीं है, पर अनुमान कर सकता





















अपने भानजे जुम्मन के नाम लिए ही थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे याजीवन गौरी-कपड़ा देना कबूत किया था। साल-भर तो मैंने इमक साथ गो-भोकर काटा, पर अब गत-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की गौरी मिलती है और न तन का कपड़ा। बेकरा बंता हूँ। कचहरी-दरवार नहीं कर सकती। तुम्हारे बिना और किसे अपना दुख सुनाऊँ ? तुम लोग जो गह निकाल दो, उभी गह पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐव देखो तो मेरे मुंह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो तो उसे समझाओ, क्यों एक बेकर्म बेवा की आह लेना है। मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई अमासियों को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले—जुम्मन मिश्री, किसे पंच बन्दे हो ? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी-न-किसी कारण उसका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें उसे वदे, मुझे कोई उज्र नहीं।

खाला ने चिल्लाकर कहा—अरे अल्लाह के बन्दे ! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता ? कुछ मुझे भी तो मालूम हो !

जुम्मन ने क्रोध से कहा—अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बंदो।

खालाजान जुम्नन के आक्षेप को समझ गई। वह बोली—  
बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के  
दुश्मन। किसी बात कहते हो? और तुम्हारा किसी पर विश्वास  
न हो तो जाने दो, अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो मैं  
उन्हीं को सरपंच बदती हूँ।

जुम्नन शेख आनन्द से फूल उठे, परन्तु भावों को छिपाकर  
बोले—अलगू चौधरी ही सही, मेरे लिये जैसे रामधन मिसिर  
वैने अलगू।

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कत्री काटने  
लगे। बोले—खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्नन से गाढी  
दोस्ती है।

खाला ने गभीर स्वर से कहा—बेटा दोस्ती के लिये कोई  
अपना इमान नहीं बचता। पंच के दिल में खुदा बसना है। पंचो  
के मुँह से जो बात निकलती है वह खुदा की तरफ से निक  
लती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्नन के  
दूसरे विरोधिया न दृष्टिया को मन में बहन कोना।

अलगू चौधरी जाने—शेख जुम्नन हम आर तुम पुरान  
दोस्त हैं। जब काम पडा तुमन हमारी मदद की है और हम भी  
जो कुछ बन पडा तुम्हारी सब करन रह ह मगर इस समय तुम  
और बूढ़ा खाला दोनों हम गी निगाह में बराबर हा तुमको पचा  
से जो अर्ज करनी हो करो।



जुम्नन शेख इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया—

‘जुम्नन शेख ! पंचो ने इस मामले पर विचार किया । उन्हें यह नीति-सगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय । हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना सुनाफ़ा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके । वस, यही हमारा फैसला है । अगर जुम्नन को खर्च देना मजूर न हो, तो हिक्वानामा रद्द समझा जाय ।’

५

यह फैसला सुनते ही जुम्नन सनाटे में आ गए । जो अपना मित्र हो, वही शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे ! इतने समय के फेर के सिवा और क्या कहे ? जिन पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया । ऐसे ही अवसरों पर भूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा हो जाती है । यही कलियुग की दोस्ती है ? अगर लोग ऐसे कपटी और धोखे-बाज न होते तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता । यह है जा-प्लेग आदि व्याधियाँ इन्हीं दुष्कर्मों के ही तो दरुद हैं ।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीतिपरायणता की जी रोलकर प्रशंसा कर रहे थे । वे वरुंते थे— इसी का नाम पचायत है । दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया ! दोस्ती दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है । ऐसे ही सत्यवादियों से बल पृथ्वी टूटी हुई है, नहीं तो







































..  
..  
..  
..  
..



तो सोच रहा हूँ कि छुट्टी लेकर घर चला जाऊँ। दोनों वक्त घर पर हाज़री बजानी होगी। आप लोग आज से सरकार के नौकर नहीं, सेक्रेटरी साहब के नौकर हैं। कोई उनके लड़के को पढ़ाएगा, कोई बाजार से सौदा-मुलफ़ लायेगा, और कोई उन्हें अख़बार सुनायेगा और चपरासियों के तो शायद दफ़्तर में दर्शन ही नहीं।

इस प्रकार सारे दफ़्तर को सुबोधचन्द्र की तरफ़ से भड़काकर मदारीलाल ने अपना कलेजा ठंडा किया।

## २

इसके एक सप्ताह बाद जब सुबोधचन्द्र गाड़ी से उतरे, तब स्टेशन पर दफ़्तर के सब कर्मचारियों को हाज़िर पाया। सब उनका स्वागत करने आये थे। मदारीलाल को देखते ही सुबोध लपककर उनके गले से लिपट गये और बोले—तुम खूब मिले भाई! यहाँ कैसे आये? ओह! आज एक युग के बाद भेट हुई।

मदारीलाल बोले—यहाँ ज़िलावोर्ड के दफ़्तर में हेड क्लार्क हूँ। आप तो कुशल से हैं?

सुबोध—अजी, मेरी न पूछो। बसरा, फ़्रांस, मिस्र और न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा। तुम दफ़्तर में हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। मेरी तो समझ ही में न आता था कि कैसे काम चलेगा। मैं तो विल्कुल कोरा हूँ, मगर जहाँ जाता हूँ, मेरा सौभाग्य भी मेरे साथ जाता है। बसरे में सभी अफसर खुश थे। फ़्रांस में भी खूब चैन किये। दो साल में कोई पच्चीस हजार रुपये बना लाया और सब चड़ा दिया। वहाँ से आकर कुछ



घातें होने लगीं—

“आदमी तो अच्छा मालूम होता है।”

“हेडक्वार्टर के कहने से तो ऐसा मालूम होता था कि सब को कच्चा ही खा जायगा।”

“पहले सभी ऐसी ही बातें करते हैं।”

“ये दिखाने के दाँत हैं।”

३

सुबोध को आये एक महीना गुजर गया। बोर्ड के क्लर्क, अरदली, चपरासी सभी उसके बरताव से खुश हैं। वह इतना प्रसन्नचित्त है, इतना नम्र है कि जो उससे एक बार मिलता है, सदैव के लिए उसका मित्र हो जाता है। कठोर-शब्द तो उनकी जवान पर आता ही नहीं। इनकार को भी वह अप्रिय नहीं होने देता। लेकिन द्वेष की आँखों में गुण और भी भयंकर हो जाता है। सुबोध के ये मारे मद्गुण मदारीलाल की आँखों में चटकने रहते हैं। वह उसका विरुद्ध कोई-न-कोई गुप्त पड्युन्त्ररचन ही रहते हैं। पहले कमचाणियों को भडकाना चाहा, सफल न हुए। बोर्ड के मन्वरो को भडकाना चाहा, मुँह ही खाई। ठीकदारों में उभारन का बीड़ा उठाया लज्जित होता पड़ा। वे चाहते थे कि भुस में आग लगा कर आप दूर से द्रुमाणा दत्ते। सुबोध से यों हँस कर मिलते, यों चिकनी-चुपड़ी बाने करते, मानो उनके मन्वें मित्र हैं, पर धान में लगे रहते। सुबोध ने और सब गुण थे, पर आदमी पहचानना न जानते थे। वे मदारीलाल को अब भी



चने जाया करते हैं। किसी दिन भोग्य उठायेगी।

काकी ने कहा—उनके कमरे में राजस्थानों के मित्र क्यों जाना ही क्यों है ?

मदारीलाल ने तीस मर में कहा—नो क्या राजस्थानों के-मर देना हैं। कथ किम ही नीयत बरल जाय, कोई नहीं रह सकता। मैने छोटी-छोटी रक्तो पर अन्धों-अन्धों की नीयतें बदलते देखी हैं। हम एक हम सभी मात हैं, लेकिन अस्मर पाकर नायद ही कोई नर। मनुष्य की यही प्रकृति है। आप जाकर उनक कमरे के दोना दरवाजे बन्द कर दीजिए।

काकी ने टाल कर कहा—चपरासी ना दरवाजे पर बैठा हुआ है।

मदारीलाल न झुंझलाकर कहा—आप म मैं नो रहना हूँ वह कीनि। रुदन लगे चपरासी बैठा हुआ है। चपरासी छोड़े छुपि है मुनि है चपरासी ही कुछ उडा दे ना आप उसका क्या कर लेंगे। जमानत भी है ना तीन सौ की। यहाँ एक-एक कागजलाखों का है।

यह रह कर मदारीलाल खुद उठ आर दफ्तर के द्वार दोनों तरफ से बन्द कर दिये। तब तब चित्त शान्त हुआ तब नोटों के पुलिन्द जेब में निकाल कर एक आलमारी में कागजों के नीचे छिपाकर रख दिये। फिर आकर अपने काम में व्यस्त हो गये।

सुबोधचन्द्र कोई बटे भर में लोटे ना उनक कमरे का द्वार बन्द था। दफ्तर में आकर मुसकिलान हुए बोले—मेरा कमरा किसने बन्द कर दिया है भाई ? क्या मेरी बेदखली हो गई ?

मदारीलाल ने खडे होकर मृदु तिरस्कार दिखाते हुए कहा—





में जरा-जरा धड़कन होने लगी। मागी मेज के कागज छान डाले, पुलिन्दों का पता नहीं। तब वे कुरसी पर बैठकर उस आय घंटे में होने वाली घटनाओं की मन में आलोचना करने लगे—चपगमी ने नोटों के पुलिन्दे लाकर मुझे दिये, खूब याद है। भला यह भी भूलने की बात है और इतनी जल्द! मैंने नोटों को लेकर यहीं मेज पर रख दिया, गिना तक नहीं। फिर वकील साहब आ गये, पुगने मुलाकाती हैं, उनसे बाने करना हुआ जरा उम पेड तक चला गया, उन्होंने पान मँगवाये, बस इतनी ही देर हुई। जब गया हूँ तब पुलिन्दे रक्खे हुए थे। खूब अच्छी तरह याद है। तब ये नोट कहाँ गायब हो गये। मैंने किमी सन्दूक, दगाज या आलमारी में नहीं रक्खे। फिर गये तो कहाँ! शायद दफ्तर में किसी ने सावधानी क लिए उठा कर रख दिये हो। यही बात है। मैं व्यर्थ ही इतना धवरा गया। छी!

तुरन्त दफ्तर में आकर मदारीलाल से बोले—आपने मेरी मेज पर से नोट तो उठाकर नहीं रख दिये ?

मदारीलाल न भौंचक्क होकर कहा—क्या आपकी मेज पर नोट रक्खे हुए थे ? मुझ तो खबर नहीं। अभी पंडित सोहनलाल एक फाइल लेकर गए थे तब आपको कमरे में न देखा। जब मुझे मालूम हुआ कि आप किमी से बाने करन चले गये हैं तब दरवाजे बन्द करा दिये। क्या कुछ नोट नहीं मिल रहे हैं ?

सुबोध आँखे फैलाकर बोले—अरे साहब, पूरे पाँच हजार के हैं। अभी-अभी चेक मुनाया है।



केवल पण्डित मोहनलाल एक फ़ाइल लेकर गये थे, मगर दरवाजे ही से झाँककर चले आये।

सोहनलाल ने सफ़ाई दी—मैंने तो अन्दर कदम ही नहीं रक्खा साहब। अपने जवान बेटे की कसम खाता हूँ जो अन्दर कदम भी रक्खा हो।

मदारीलाल ने माया निकोडकर कहा—आप व्यर्थ में कसमे क्यों खाते हैं, कोई आपसे कुछ कहता है। (सुबोध के कान में) बैंक में कुछ रुपये हों तो निकालकर ठीकदार को दे दिये जायें। वरना बड़ी बदनामी होगी। नुक़मान तो हो ही गया, अब उसके साथ अपमान क्या हो।

सुबोध ने करुण-स्वर में कहा—बैंक में मुश्किल से दो-चार सौ रुपये होंगे भाईजान। रुपये होते तो क्या चिन्ता थी। समझ लेता, जैसे पच्चीस हजार उड़ गये, वैसे तीस हजार उड़ गये। यहाँ तो कफ़न को भी कौड़ी नहीं।

+ + +

उमी रात को सुबोधचन्द्र ने आत्महत्या कर ली। इतने रुपयों का प्रवध करना उनके लिए कठिन था। मृत्यु के परदे के सिवा उन्हें अपनी बेदना, अपनी विवशता को छिपाने की और कोई आड नहीं।

४

दूसरे दिन प्रातः काल चपरामी ने मदारीलाल के घर पहुँचकर आवाज दी। मदारीलाल को रात-भर नींद न आई थी। घबराकर बाहर आये। चपरासी उन्हें देखते ही बोला—हज़ूर! बड़ा



“कुछ न पूछिए हज़र ! पेड की पत्तियाँ झड़ो जानी हैं । आँसे फलकर गूलर हो गई हैं ।”

“कितने लडके बननाये तुमने ?”

‘हज़र, दो लडके हैं और एक लडकी ।’

“हाँ-हाँ लडकों को तो देग्य चुका हूँ ! लडकी मयानी होगी ?”

“जी हाँ, क्यादने लायक है । रोते-रोते बेचारी की आँसों मूच आई हैं ।”

‘नोटों के बार में भी बातचीत हो रही होगी ?’

“जी हाँ, गन लोग यही कहते हैं कि दफ्तर के किमी आइमी का काम है । दयोगा जी तो मोहनलाल को गिरफ्तार करना चाहते हैं । पर माइन बाप से सताह लकर हरेगे । गिरफ्तारी साहब तो प्लान ग्य है कि मया किमा पर शक नहीं है । नही तो आत तक नर नका मार जाना । मारा इफ्तार फेंक जाना ।”

‘क्या गिरफ्तारी साहब चाहे गन लिगकर छोड गये हैं ?’

“गन लुम गना है । गमी चलाने तक बार आई कि शक नही है । न लोग बक डे तय जान्येग । म कलट्टर साहब के नासि लुटो लना है ।”

‘लुटो न मर कर म जा । डे प्लाना है ? मुझे यद क्या म लुटो है ?’

‘मया अरु बक डे मया लुटो इतना मय लोग कहत है कि अ पकी मरी बक डे मया है ।’

‘महाशय-मया की मया अरु नर दो लुटो । आँसों से आँसू की



इसी वक्त सुबोध के दोनों बालक रोते हुए मझरीलाल के पास आये और कहा—'बलिये आपको अम्मा बुलाती हैं।' दोनों मझरीलाल से परिचित थे। मझरीलाल यहाँ तो रोज ही आते थे, पर घर से कभी न गये थे। सुबोध की स्त्री उनसे परदा करती थी। यह बुलावा सुनकर उनका दिल धडक उठा—कहीं इसका मुझ पर शुबहा न हो। कहीं सुबोध ने मेरे विषय में कोई मन्देश न प्रकट किया हो। कुछ भिन्नकते, कुछ डरते, भीतर गए, तब विषय का करुण-विलाप सुनकर कलेजा काँप उठा। इन्हें देखते ही उस अचलाक आँसुओं का कोई दूसरा मोना गुल गया और लड़की तो दौड़ कर उनके पैरों में लिपट गई। दोनों लड़कों ने भी धर लिया। मझरीलाल का उन तीनों की आँसुओं में ऐसी अथाह वेदना, ऐसा विदारक याचना भरी हृदय मात्रम हुई कि वे उनकी ओर देख भी न सके। उनकी आत्मा उन्ह विकारने लगी। जिन बंधारों का उन पर इतना प्रभाव इतना भरोसा, इतनी आत्मीयता, इतना स्नेह था उन्हीं की मदद पर उड़ी करी। उन्हीं के हाथों यह बराबरी का सार सार उल्टा मिल गया। इन असहायों का अर्थ क्या जान सके। लड़कों का विचार करना ही कान करवा ! क्या कलकल बालक के भार कान उदायगा ? मझरीलाल को इतनी अन्धकार में उठा कि उनके मुँह में तमस्रा का एक शब्द भी न निकला। उन्ह ऐसा जान पड़ा कि सब मृत्यु में कालिय गृही हुई है, मरने की छटा ही गया है। उन्हीं जिन वक्त नोट उड़ाए थे उन्ह गुमान भी न था कि उन्का यह फल होगा। वे केवल सुबोध











राम ने जाकर कहा—दासी यह सन्तान मुझे करने दो । तुम  
 क्रिया पर बैठ जाओगी तो बंदों को तौन भैयाकेगा । सुबोध  
 से भाई थे । जिनकी में उनके साथ कुछ ननुक न कर सका, अब  
 जिनकी के दास हूँमे दोन्नी का कुछ एक प्रदा कर लेने दो ।  
 आखिर मेरा भी तो उन पर कुछ एक था । रामेश्वरी ने रोकर  
 कहा—आपको भगवान ने बड़ा बड़ा हृदय दिया है भैयाजी,  
 नहीं तो मरने पर तौन जिनकी पड़ता है । दफ्तर के और लोग,  
 जो आधी-प्याधी रात तक दास बांधे बंधे रहते थे, झूठे दास पृथने  
 न आये कि जरा टारभ होता ।

मदारीलाल ने दाह-सम्कार किया । तेरह दिन तक क्रिया पर  
 बैठे रहे । तेरहवें दिन पिण्डदान हुआ । प्रदणों ने भोजन किया,  
 भिन्यागियों को अन्नदान किया गया मित्रा की दावत हुई, और  
 यह सब कुछ मदारीलाल ने अपन खूब स किया । रामेश्वरी ने  
 बहुत कहा कि आपन जितना किया । उनता ही बहुत है, अब मैं  
 आपको और जरदार नहीं करना चाहती । दासी का एक इमसे  
 ज्यादा और कोई क्या प्रदा करगा । मार मदारीलाल ने एक न  
 सुनी । सार शहर में उनक यश की धूम मच गई । मित्र हो तो  
 ऐसा हो ।

सोलहवें दिन विधवा ने मदारीलाल से कहा—भैया जी, आप  
 ने हमारे साथ जो उपकार और अनुग्रह किए हैं उनसे हम मरत  
 दम उच्छ्रय नहीं हो सकते । आपन हमारी पीठ पर हाथ न रखना  
 होता, तो न-जाने हमारी क्या गति होती । कहीं सुख की भी छाँह तो











1. 2. 3. 4. 5.

6. 7. 8. 9. 10.

11. 12. 13.

14. 15. 16.

17.

ने कहा—चल, अभी जाते हैं। बेगम नाहवा का मिजाज गरम था। इतनी ताब उर्हा कि उनके मिर में दर्द हो, और पनि शतरज खेलता रहे। चेहरा मुर्ज हो गया। लौंडी से फटा—जाकर बट, अभी चलिए, नहीं तो बट आप ही हकीम के यहाँ चली जायेंगी। मिर्जाजी बड़ी दिलचस्प वाक्ती खेल रहे थे, दो ही किरतों में मीरसाहब को मात हुई जाती थी। झुंझलाकर बोले—क्या ऐसा कम लवों पर है ? जरा सत्र नहीं होता ?

मीर—अरे, तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाजक-मिजाज होती ही हैं।

मिर्जा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ। दो किरतों में आपको मात होती है।

मीर—जनाव, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहे, और मात हो जाय, पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख्वाहमख्वाह उनका दिल दुखाइएगा ?

मिर्जा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्जा—अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द खाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ ही हो, उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्जा—अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हर्गिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।



यह कहकर वेगम साहवा झुलाई हुई दीवानखाने की तरफ  
 बली। मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया। बीबी की मिलातें करने  
 लगे—खुदा के लिए, तुम्हें हजरत हुसैन की कसम। मेरी ही  
 भयत देखे, जो उधर जाय। लेकिन वेगम ने एक न मानी। दीवान-  
 खाने के द्वार तक गई, पर एका-एक परपुरुष के सामने जाते हुए  
 पाँव बँध-से गए। भीतर भाँका। संयोग से कमरा खाली था।  
 मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे और अपनी  
 झुलाई जताने के लिये बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, वेगम  
 ने अन्दर पहुँचकर बाजी उलट दी, मुहरे कुछ तरखन के नीचे फेंक  
 दिए, कुछ बाहर, और क़िवाड अन्दर से बन्द करके कुडी लगा  
 दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंक जाते  
 देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बन्द  
 हुआ, तो समझ गए कि वेगम साहबा बिगड गई। चुपके से घर की  
 राह ली।

मिर्जा न कहा तमने राजब किया

वेगम—एक मीर साहब इधर गए तो गले में झुलाई लवा  
 दूँगी। इतनी लो खबर से जगत, तो अब राजाद ही जगत आप  
 तो शतरंज खेल कर में यही क... मीर साहब २१ १०५ न...  
 रपाऊँ ला मत हा एशिम का... ११५ एद नी ता...

मिला घर में नियले, तो ह...

साहब के घर पहुँचे और  
 मैंने तो मुहरे पार



कौनने की तरम चानी ।

धर नौरों मे भी काना-फुमी होने लगी । अब तक दिन-भर पटे-पटे गरिबियाँ मारा करते थे । घर मे चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, उनसे कुछ मनलव न था । आठों पहर की धोस हो गई । कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का और हुआ तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था । वे वेगम साहवा से जा-जाकर कहते—हुजूर, मियाँ की शरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई ! दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए । यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे, तो शाम ही कर दी ! घड़ी-आध-घड़ी दिल-बहलाव के लिये खेल लेना बहुत है । खैर, हमे तो कोई शिकायत नहीं; हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, वजा ही लावेंगे; मगर यह खेल मनहूस है । इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं; घर पर कोई-न-कोई आफत जरूर आती है । यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले-के-महल्ले तवाह होते देखे गए हैं । सारे महल्ले में यही चर्चा होती रहती है । हुजूर का नमक खाते हैं, अपने आका की बुराई सुन-सुन कर रंज होता है, मगर क्या करें । इस पर वेगम साहवा कहतीं—मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय ।

महल्ले मे भी जो दो-चार पुराने जमाने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के असंगल की कल्पनाएँ करने लगे—अब खैरियत नहीं है । जब हमारे रईसों का यह हाल है तो मुल्क का खुदा

मिर्जा—बज़ाड, आपको खूब सूझी ! हमको मित्र और कोई तदवीर ही नहीं है ।

इधर मीर साहब की वेगम डम मवार से कह रही थी—  
‘तुमने खूब धता बनाई ।’ उमने जवाब दिया—‘ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ । इनकी सारी अज्ञा और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली । अब भूल कर भी घर पर न रहेंगे ।’

३

दूसरे दिन ने दोनों मित्र मुँड-अँधेरे घर से निकल खड़े होते । चणल में एक छोटी-सी दरी दवाए, दिव्वे में गिलौरियाँ भरे, गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाने, जिनमें गायद नवाब आमिफ़रदौला ने बनवाया था । रास्ते में तन्वाद्, चिलम और मदगिया ले लेते और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भरकर शतरंज खेनने बैठ जाते थे । फिर उन्हें दीन-दुनियाँ की फ़िक्र न रहती थी । ‘मिस्त ग़ह आदि दो-एक शब्दों के मित्रा उनक मुँड ने और कोई वाक्य नहीं निकलता था । कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होना होगा । दोपहर को जब भूख मालूम होनी, तो दोनों मित्र किसी नानवाई की दूकान पर जाकर खाना खा अन आर एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-जेत्र में डट जाते । कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी खयाल न रहता था ।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयकर होती जा रही थी । कम्पनी की फ़ौजें लखनउ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं । शहर

हमचल नहीं हरे थी। लोग बाल-बगों को ले-लेकर देहातो  
 भग रहे थे, पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को हमरी जरा भी  
 फिकर नहीं, वे घर से आते, तो गलियों में होकर। उर था कि  
 यही हिन्दी दादशाही कर्मचारी ही निगाह न षडू जाय, जो बेगार  
 पैसडे जायें। हजारों रुपए सालाना ही जागीर सुक में ही  
 इन करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज  
 खेल रहे थे। मिर्जा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब उन्हें  
 मित्र-पर-किरत दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए  
 दिखाई दिए। यह गोरो की फौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार  
 आने के लिये आ रही थी।

मीर साहब बोले अंगरेजी फौज आ रही है, खुदा खैर करे।

मिर्जा—आने दीजिए किशन बचाइए। तो यह किशत।

मीर—जरा देखना चाहिए यहाँ आड में खडे हो जायें।

मिर्जा—देख लीजिएगा जल्दी क्या है फिर किशत।

मीर—तोपरखाना भी है। कोई पाच हजार आदमी हंगे।  
 ऐसे जवान हैं। लाल बन्दरों क-न मुँह है। मूरत देखकर खोफ  
 मालूम होता है।

मिर्जा—जनाव, हीले न कीजिए ये चकमे किसी और को  
 दीजिएगा-यह किशत।

मीर—आप भी अजीब आदमी है। चटा तो शहर पर आफत  
 आई हुई है और आप को किशत की सूती है। कुछ इसकी भी





सन की चरम सीमा थी ।

मिर्जा ने कहा—हुजूर नवाब साहब को जालिमों ने कैद कर लिया है ।

मीर—होगा, यह लीजिए शह !

मिर्जा—जनाव जुरा ठइरिए । इस वक्त इधर तबीयत नहीं लागी । बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे ।

मीर—रोया ही चाहें । यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा—  
ए क्रिश्त ।

मिर्जा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते । कितनी दर्दनाक वस्तु है ।

मीर—हाँ, सो तो है ही—यह लो फिर क्रिश्त ! वस, अब शी क्रिश्त में मात है, बच नहीं सकते ।

मिर्जा—खुदा की कृपम, आप बड़े बर्द है । इतना बड़ा शर्मनाक देसकर भी आपको दुख नहीं होत । ए प्र गरीब बर्जिद-  
दनी शाह ।

मीर—पहले अपने बादशाह को ताबचाहा फिर नवाब साहब को मानम कीजिएगा । यह क्रिश्त और मत लान ए प्र

बादशाह को लिए हुए संना नामन ल निरल नइ । ए प्र मत  
मीर्जा ने फिर बाजी विद्धा दी । हार की चाहे ए प्र ए प्र

मीर ने कहा—आइए, नवाब साहब को मानम न ए प्र भरमिया कइ ए ल

मीर्जा जी की राजभक्ति अपना हार व साध लुन हो चकी  
मीर वह हार का बदला चुकाने व लिए अर्धीर हो रह ए



अपनी सहायता की।

मिर्जा ने कहा— 'मगर नवाब साहब की सलाहों ने कैद कर दिया है।

मीर— 'मेरा, यह भीतर है।

मिर्जा— 'जनाब नवाब साहब। इस वक्त इधर नदीयत नहीं जाती। देखते नवाब साहब इस वक्त गूल के शत्रु भी रहे होंगे।

मीर— 'मेरा ही शत्रु है। यह मेरा चर्चा यहाँ नसीब होगा-  
कहिस्त।

मिर्जा— 'किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक बात है।

मीर— 'हाँ, मो तो ' लो-यह लो फिर किरत ' वस, अब भी किरत में मान है, वच नहीं सकते।

मिर्जा— 'खुद की कमम आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुख नहीं होना। हाथ गरीब बाजिद-  
शली शाह।

मीर— 'पहले अपने बादशाह को तो बचाइए फिर नवाब साहब को मातम कीजिएगा। यह किरत और मान। लाना हाथ।

बादशाह को लिख हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्जा ने फिर बाजी बिद्धा दी। हार की चोट बुरी होनी है। मीर ने कहा— 'आइए नवाब साहब के मातम में एक भरसिया कड़ डालें, लेकिन मिर्जा जी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी, वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

## दो बेलों की क

?

जानवरो मे गधा सबसे ज्यादा  
हम जब कि को पल्ले दरजे  
है, तो । गधा स  
सीधेपन  
इसका किया  
व्याई अनायास  
लेती गरीब  
भी को । है । ले  
सुना, न चाहे  
सही हुई

मीर साहब का फरजी पिटना था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी ?

मिर्जा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहाँ रख दीजिए। रूम पर मैं।

मीर—उस घर में क्यों रक्खूँ ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था ?

मिर्जा—मुहरा आप कयामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी ? फरजी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे !

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तक्कदोर से होती है, धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्जा—तो इस वाजी में आप को मात हो गई ?

मीर—मुझे क्यों मान होने लगी।

मिर्जा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए जहाँ पहले रक्खा था।

मीर—वहाँ क्यों रक्खूँ ? नहीं रखना।

मिर्जा—क्यों न रखिएगा ? आप भरो रखना ही होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर खड़े थे। न यह बबता था न वह। अप्रासंगिक बातें हाने लगा। मिर्जा बोले किसी ने खानदान में शतरंज खेती होती नव तो इसका काफ़ी जानते थे तो हमेशा घाम खीला कि आप शतरंज क्या खेलिएगा ? रियासत ख़ैर ही चीज है। ज़ग़ार मिल जान ही से कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या 'घाम आपर अब्बाजान खोलन होग' यहाँ ले

## दो बैलों की कथा

१

जानवरो मे गधा सबसे ज्यादा बुद्धिहीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पल्ले दर्जे का वेवकूफ कहना चाहते है, तो उसे 'गधा' कहते हैं। गधा मचमुच वेवकूफ है या उसके मीधेपन, उसकी निरापद महिष्मगुना ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, व्याईं हूईं गाय ने अनायाम ही सिहिनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है। लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी रसबा सडी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असंतोष





और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है, अतएव वेवकूफी में उसका स्थान गधे से नीचा है।

## २

भूरी काछी के दोनों वैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाई जाति के थे। देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील के ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक दूसरे से मूक भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे। विग्रह के भाव से नहीं केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्टता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुस-फुसी कुछ हलकी-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता।

वक्त ये दोनों वैल हल या गाड़ी में जोत दिए जाते, और गरदने हिला-हिलाकर चलते, तो हरेक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से ज्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते तो एक दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकन मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड जाने के बाद दोनों साथ उटते साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते

की छाया भी न दिखाई देगी। चैतार में चाहे एकाध बार कुत्तेल कर लेता हो, पर हमने तो उने कभी लुग होते नहीं देखा। उमके चेहरे पर एक स्थायी विपाद स्थिररूप से छाया रहता है। सुख-दुख, हानि-लाभ, किसी दशा में भी उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियो-मुनियो के जितने गुण हैं, वे सारी उसमें अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं, पर आदमी उसे वेवकूफ कहता है। सद्गुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिये उपयुक्त नहीं है। देखिये न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका में उन्हे घुसने नहीं दिया जाता? वे चार शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिये बचा कर रखते हैं, जो-मोड कर काम करते हैं। किसी से लडाई-भगडा नहीं करते, चार बदन मुन कर भी गम खा जाते हैं, फिर भी बदनाम हो कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करने हैं। प्रकृति का इतना जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद समर्थ कहलाने का नाम उने पर भी मिलता। एक ही जेवर में उस समय का समर्थ च नियो मगरप बना दिया।

लेकिन लड़े का एक हाथ मरु और भी है। जो उमस कुत्त ही कम गये है और वह है वैल। जिस अर्थ में हम गधा शब्द का प्रयोग करते हैं कुत्त उमी में मिलन-जुक्त अर्थ में बहिया के नाऊ का प्रयोग करते हैं कुत्त लोग वैल को शायद वेवकूफी में सबश्रेष्ठ कहेंगे मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है। वैल कभी-कभी मारता भी है कभी-कभी अडियल वैल भी उमस में आ जाता है

तो दोनों ने जोर मार कर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा। पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

भूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनो में आधा-आधा गरांव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोह-मय स्नेह झलक रहा है।

भूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुन्वन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजा कर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूत-पूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण अवश्य थी। बाल-सभा ने निश्चय किया दोनों पशु-वीरों का अभिनन्दन करना चाहिये। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर और कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किमी के पास न होंगे।

दृमरे ने समर्थन किया—इतनी दूर न दोनो अंगेले चले आये।

तीमरा बोला—बैल नहीं हैं वे, उम जनम क आदमी हैं।

इमका प्रतिवाद करने का किमी को माहस न हुआ।

भूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली



ये। एक मुँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, भूरी ने एक बार गोई को ससुराल भेज दिया। वैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या दुरा, कौन जाने, पर भूरी के साले गया को घर तक गोई ले जाने से दाँतो पसीना आ गया। पीछे से हाँकना तो दोनों दाये-दाये भागते, पगहिया पकड़ कर आगे से पीछता, तो दोनों पीछे को जोर लगाते। मारना, तो दोनों नोंग नीचे करके हँसते। अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती तो वे भूरी से पूछते—तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो ? हम ने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखती। अगर एतनी महत्तन में काम न चलता था और क म केन हम तो तुम्हारी खावरी में मर जाना कटूल था हमने क म उतन कर का कर उन नहा की तुमन जो कुछ, तल्लय वा मिर भुव पर र. तय पर -मन हम हम जर्मिन व हाय कर र. तय

तो दोनों ने जोर मार कर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा। पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

भूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनों में आधा-आधा गरांव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोह-मय स्नेह झलक रहा है।

भूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लडके जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजा कर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूत-पूर्व न होना पर भी महत्वपूर्ण अवश्य थी। बाल-ममा न निश्चय किया दोनों पशु बीरों का अभिनन्दन करना चाहिये। कोई अपने घर में गाँविया लाया, छोड़ गुड़, कोई चोकर और कोई भूमी।

एक बालक न कहा—मेरे बैल किसी के पास न होंगे।

दूसरे न समर्थन किया—इतनी दूर में दोनों अंगेले चले आए।

तीसरा बोला—बैल नहीं हूँ, उस जनम के आदमी हूँ।

दसरा प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

भूरी की स्त्री न बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली



३

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोना।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

मंज्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में बाँधा, और कल की शराब का मज़ा चखाया। फिर वही नुस्खा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खनी, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कर्मी न हुआ था। झूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूना था। उनकी टिटकार पर दोनों उठने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सन्मान की व्यथा तो थी ही। उम पर मिला नुस्खा भूसा। नाँद की तरफ आँखें भी न उठाई।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की क्रमशः म्या ली थी। वह मारने-मारते थक गया, पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डंके जमाये, तो मोती का गुम्मा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर मगा। हल, रम्मी, जुआ, जोर, सब टूट-टाटकर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्मियाँ न होनी तो दोनों परछाई ही न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उमी भाषा में उत्तर दिया। दुम्हारी तो हमने जान ही ले ली थी। अब की बड़ी मार पड़ेगी।

Handwritten title or header text

Handwritten text consisting of approximately 15 lines of dense script, likely in a historical or religious context. The text is written in a cursive style and is somewhat faded and difficult to decipher. It appears to be a continuous passage of text, possibly a letter or a manuscript page.



दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और वैलों को ले चला।  
अवकाश उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना  
चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में  
बाँधा, और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूया  
भूसा डाल दिया। अपने दोनों वैलों को खली, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों वैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। भूरी इन्हें  
फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने  
लगत थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही,  
उस पर मिला मूखा भूसा। नाँव की तरफ आँखें भी न उठाई।

दूसरे दिन गया ने वैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने  
जैसे पाँव उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक  
गया, पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उम निर्दयी ने  
हीरा की नाक में खूब डंके जमाये, तो मोती का गुस्मा काबू के  
बाहर हो गया। हल लेकर भगा। हल, रस्सी, जुआ, जोत, सब  
टूट-टाटकर बरानर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं  
तो दोनों परुडाई ही न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती न उमी भाषा में उत्तर दिया। गुस्मारी तो इसने जान  
ही ले ली थी। अब की बड़ी मार पडगी।

"पडने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहा तक बचेगे।"

"गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोनों के हाथों में लाठियों हैं।"

मोती बोला - कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा में भा। लाठी लेकर आ रहा है।

हीरा ने भमकाया नहीं भाइ 'खडे हो च व

मुझे मारेगा, तो मैं भी एक = तो गिरा दे।

नहीं हम गी च व क. यह = चला ह

३

दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला।  
अवनी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना  
चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

सध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में  
बाँधा, और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा  
भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। भूरी इन्हें  
फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने  
लगतें थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही,  
उम पर मिला मूखा भूसा! नाँद की तरफ आँखें भी न उठाईं।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता; पर इन दोनों ने  
जैसे पाँव उठाने की कमम खा ली थी। वह मारते-मारते थक  
गया, पर दोनों न पाँव न उठाया। एक बार जब उम निर्दयी ने  
हीरा की नाक में खूब डङ्गे जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू के  
बाहर हो गया। हल लेकर भगा। हल, रम्मी, जुआ, जोत, सब  
टूट-टाटकर बगार हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होनीं  
तो दोनों पकड़ाइें ही न आते।

हीरा न मूक भापा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती न उमी भापा में उत्तर दिया। तुम्हारी तो हमने जान  
हा ले ली थी। अब की बड़ी मार पड़ेगी।



दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला।  
अवनी उमने दोनों को गाड़ी में जोना।

दो-चार चार मोती ने गाड़ी को मड़क की खाई में गिरना  
चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

मध्या समय घर पहुँचकर उमने दोनों को मोटी रस्मियाँ में  
बाँधी और हल की शरारत का मजा चखाया। फिर बड़ी सूना  
भूमा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को गनी, चूनी, सब कूट दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। भूरी इन्हें  
हल की छडी में भी न छूना था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने  
लगते थे। यहाँ मार पट्टी। आहन-सम्मान की व्यथा तो थी ही,  
उस पर मिला नृग्या भूमा! नाँव की तरफ आँसू भी न उठाई।

दूसरे दिन गया न बैला को हल में जोना, पर इन दोनों ने  
उस पौर पट्टी की क्रम में घायली थी। वह मारने-मारने शुरू  
करा। 'मर जाते न पाव न उठाये'। पर चार जब उन निर्दयी ने  
दोनों को मरने से डर डट जमाय वा मारती का गुस्सा सापुँके  
करके चला। 'उस पौर मार'। हल रस्सी, नुखा, जेत, मर  
डूक डूक... 'मर जाते न पाव न उठाये'। हल में बड़ा-बड़ी रस्मियाँ न होनी  
ना... 'मर जाते न पाव न उठाये'।

इस से मुन्ना के पेट में अना भावन अव्यर्थ है।

जब से मुन्ना ने घर में उतर दिया नुखारी को इतने जत  
... 'मर जाते न पाव न उठाये'।

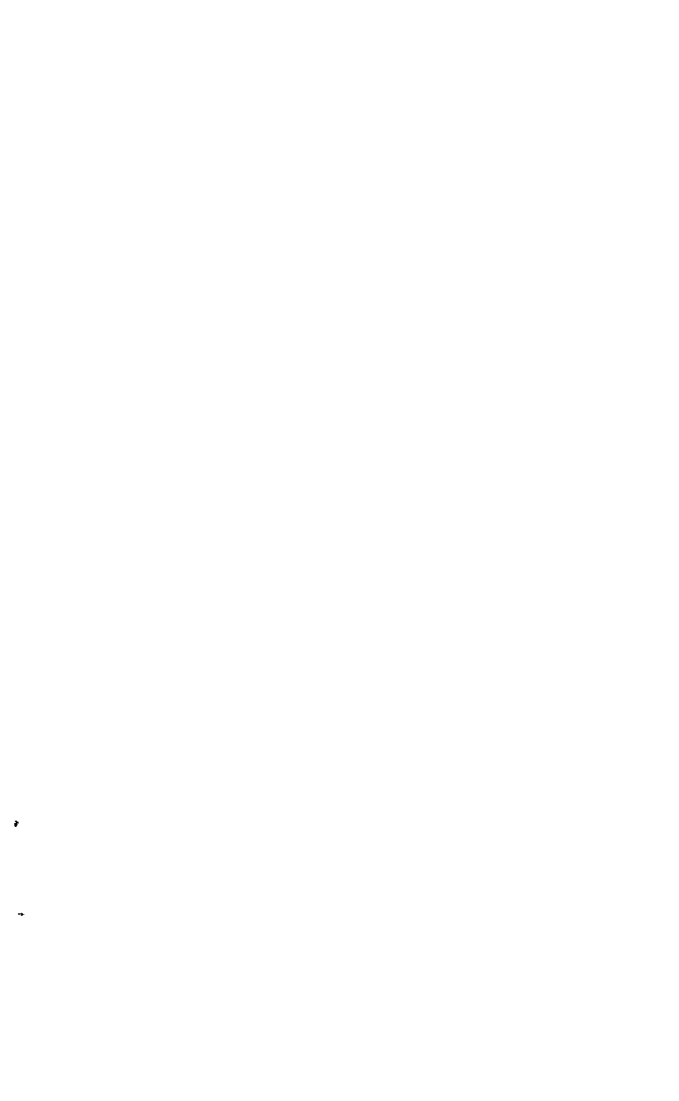












मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—मेरा जी तो चाहता था कि बचा को मार ही डालूँ ।

हीरा ने तिरस्कार किया—गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिये ।

“यह सब ढोंग हैं । बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे ।”

“अब घर कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो ।”

“पहले कुछ खा लें, तो सोचें ।”

सामने मटर का खेत था ही । मोती उसमें घुस गया । हीरा मना करता रहा; पर उसने एक न सुनी । अभी दो ही चार ग्रास खाए थे कि दो आदमी लाठियों लिए दौड़ पड़े, और दोनों मित्रों को घेर लिया । हीरा तो मेंड़ पर था, निकल गया । मोती सींचे हुए खेत में था । उसके खुर कीचड़ में घँसने लगे । भाग न सका । पकड़ लिया गया । हीरा ने देखा, संगी संकट में है, तो लौट पड़ा । फँसेंगे तो दोनों साथ फँसेंगे । रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया ।

प्रातःकाल दोनों मित्र कांजी-हौस में वन्द कर दिए गए ।

५

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा सावका पड़ा कि । दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला ।

ही में न आता था, यह कैसा स्वामी है । इससे तो गया फिर भी अच्छा था । वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे, परन्तु चारा किसी के सामने न था । सब ज़मीन पर



बाड़े में बाहर भगा दिया और जब स्वयं आपने बन्धु के पास आ कर नो रखा ।

भोर होने ही मुशी, चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों में कैसी मालाची मानी, उसके लिगने की ज़रूरत नहीं । यम इतना ही काफ़ी है कि मोती की रात मरम्मत हुई और उसे भी मोठी रस्मी से बाँध दिया गया ।

## ६

एक सप्ताह तक दोनों मित्र यहाँ बँधे पड़े रहे । हिस्सी ने चारे का एक नूगा भी न डाला । हाँ, एक बार पानी दिया गया था । यही उनका आभार था । मूले आममान के नीचे ये दिन-रात पड़े रहते थे । दोनों इतने दुर्बल हो गए थे कि उठा तक न जाना था । ठठरिया निकल आई थी

एक दिन बाटे क सामने दुर्गी बजन लगी और दो पहर होते-होते वहाँ पचास साठ आदमी जमा हो गये । तब दोनों मित्र निकाले गये और उनकी दख भाल हान लगी । लोग आ-आकर उनकी मूरत दखत और मन फीका करके चले जाते । ऐसे मृतक बेलों का होन सरीदार हाना

सहसा एक दृष्टियल आदमी जिसका आँखे लाल थी और मुद्रा अत्यन्त भठोर, आया और दोनों मित्रों क कूल्हो म उँगली गोद कर मुशी जी से बातें करन लगा । उसका चेहरा देख कर, अन्तरज्ञान से, दोनों मित्रा क अदल काँप उठे । वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न रहा ।



हे । हाँ, इमी गम्ने से गया उन्हे ले गया था । नही खेन, नही  
 बाय, नही गाँव मियने लगे । प्रति खग इनकी खान तेज होने  
 लगी । मागी शकान, मारी दुर्बलता गायब हो गई । अहा ! यह  
 लो ! अपना ही द्वार प्यागया । इमी कर्ण पर हम पुर खजाने आया  
 करते थे । हाँ, नही कुर्याँ है ।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया ।

हीरा बोला—भगवान की दया है ।

“मैं तो अब घर भागता हूँ ।”

“यह जाने देगा ?”

“इसे मैं मार गिराता हूँ ।”

“नहीं-नहीं, दौड कर थान पर चलो । वहाँ से हम आगे न  
 जायेंगे ।”

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ा की भाँति कुलेले करते हुए घर की  
 ओर दौड़े । वह हमारा थान है । दोनो दौड कर अपने थान पर  
 आए और खडे हो गए । दड़ियल भी पीछे-पीछे दौडा चला  
 आता था ।

भूरी द्वार पर बैठा धूप खारहा था । बैलो को देखते ही दौडा  
 और उन्हे बारी-बारी से गले लगाने लगा । मित्रों की आँखों से  
 आनन्द के आँसू बहने लगे । एक भूरी का हाथ चाट रहा था ।

इसी समय दड़ियल ने आ कर बैलों की रस्सियाँ पकड लीं ।

भूरी ने कहा—मेरे बैल हैं ।

“तुम्हारे बैल कैसे । मैं मवेशीखाने से नीलाम लिए आता हूँ ।”

दोनों ने एक दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रुद्धा के भाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान सब के ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती।

“भगवान के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर हैं। चलो अच्छा ही है, कुछ दिन उनके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचायेगे।”

“यह आदमी छुरी चलावेगा। देख लेना।”

“तो क्या चिन्ता है। मांस, खाल, नोंग, हड्डी सब किमी-न-किसी काम आ जायेंगी।”

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दृष्टियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव नरम न उठा सकते थे, पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे, क्योंकि वह जग भी चाल धीमी हो जाने पर जोर से टपटा जमा देता था।

राह में गाय-दौलो का एक रेवड हरे-हरे हाथ में चरना नजर आया। सभी जानवर प्रभाव थे, चिन्ते, खपल। कोई चालना था, कोई आनन्द में बैठे पाशुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई दधिर के हाथ पड़े सैन हुनी हैं।

सहसा दोनों को ऐसा भाव हुआ कि यह परिचित राह



“हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता ।”

“इसीलिये कि हम इतने मीधे होते हैं ।”

जरा देर में नाँदों में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे । भूरी खडा दोनों को सहला रहा था और बीसों लडके तमाशा देख रहे थे । सारे गाँव में उझाह-सा मालूम होता था ।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये ।

— — —

हैं जो भाग्यवान् हैं, जहाँ फिर जाते हैं। उनके से-  
 लों। मैं बोलूँ। श्री गौरी ने बिन्देने। किसी भी से से  
 विद्याय करते का कथा जगन्निवार है।

“आकर आने से क्या कर दूँगा।”

“मैं बोलूँ। इतना बहुत था कि मैंने तब पर गये हैं।”

दृष्टियल भागा पर किसी को जगन्निवारी पकड़ ले जाने से लिये  
 था। अभी वह मोती ने भाग जाता था। दृष्टियल पीछे हटा।  
 मोती ने पीछा किया। दृष्टियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के  
 बाहर निकल जाने पर वह रुका, पर गडा दृष्टियल का रास्ता देखा  
 रहा था। दृष्टियल दूर गया भगवतिर्या टं रहा था, गालियाँ निकाल  
 रहा था, पत्थर फेंक रहा था और मोती विजयी शूर की भाँति  
 समका राम्ता रोके गटा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे,  
 और हँसते थे।

जब दृष्टियल हार कर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ  
 लौटा।

हीरा ने कहा—मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर  
 मार न चेंठो।

“अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बेमारे न छोड़ता।”

“अब न आवेगा।”

“आवेगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ, कैसे ले जाता है।”

“जो गोली मरवादे ?”

“मर जाऊँगा। पर उसके काम तो न आऊँगा।”

हन्ने के भेट काशेवित्त, थानेदार, सिता-किशान के आकर, एक जगह वस जौमान मे पग हो गइया । मन्त्री धारे मृशी क कुने म समाते । पग भाग । उनके द्वार पर आव इतने गंठे-ठे हाकिम आकर ठहरते है । जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न खुलता था, पत्नी की आव मन्त्री-मन्त्री कहते जगह मृगशी भी । कभी कभी भजन भाव हो जाता । एक मन्त्री ने जौत आस्था देना तो गाँव मे आसन जमा दिया । गाँव और धर्म की बदल करने लगी । एक लोलक आरी, मँजीर मँगवाए गए, मन्त्रम होने लगा । यह सब सुजान क दम का अङ्गुस था । घर मे रोगे दूध होना, मगर सुजान क कठ-बले एक खूँस जाने की भी कसम थी । कभी हाकिम लोग आने, कभी मन्त्री लोग । किमान को ध-धी म क्या मन्त्रय । उसे तो गेटी और साग खाटिए । सुजान हो नपना भा आव परभाव न था । सबके सामने धार झकाए रहना, कभी लोग पद न रहने लगे कि धन पाकर इन समझ हो गया है । गाँव म कलान हो कुण्ठ, बहुर-म स्वता म पना न उदु-नता था । गाँव मारी जाले थो, सुजान ने एक पहा ऊँची और बनसा गया । एक का विवाह हुआ, यत हुआ, प्रसन्नभोजन हुआ । जिन दिन एक पर पत्नी धार पुर चला, सुजान को माना चारा उदय मन्त्र गाए । तो काम गाव म किमी ने न किया थ, वह बाव । उदय पुण्य-प्रताप स सुजान न कर दिखाया ।

एक दिन गाव म गया क यात्री आकर ठहर । सुजान ही के द्वार पर उनका भोजन बना । सुजान क मन म भी गया करने

की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा—अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गंभीर भाव से कहा—अगले साल क्या होगा, मैं जानता हूँ। धर्म के काम में मीन-मेप निकालना अच्छा नहीं। जिद्दगानी का क्या भरोसा।

बुलाकी—हाथ खाली हो जायगा।

सुजान—भगवान् की इच्छा होगी तो फिर रुपए हो जायेंगे। उनके यहाँ किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती। सत्कार्य में बाधा डाल कर अपनी मुक्ति क्यों बिगाडती? प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहाँ से लौटते, तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरा। मातों विरादरी निर्मंत्रित हुई, ग्यारह गाँवों में सुपारी बटी। इस घूमनाम से कार्य हुआ कि चारों ओर बाह-बाह मच गई। सब पट्टी कहने कि भगवान् धन दे, तो दिल भी ऐसा हो द घमट नो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाना फिरना था। कुन का नाम जगा दिया। बेटा हो, तो ऐसा हो। बाप मग नो घर में मूर्त नांग भी नहीं थी। अब लक्ष्मी घुटने तोंड घर आ देती हैं।

एक द्वेषी ने कहा—'कहीं गडा हुआ धन पा गया है। तो चारों ओर से उस पर बौद्धारों पडने लगी—हा, तुम्हार दप-रग जो खजाना छोड गए थे, वही उसके हाथ लग गया है।

अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो छानी फाड़ कर काम करते हो, क्यों ऐसी ऊम्व नहीं लगनी, क्यों ऐसी फमल नहीं होती ? भगवान् आदमी का दिल देखते हैं; जो खर्च करना जानता है, उसी को देते हैं।

२

सुजान महतो सुजान-भगत हो गए। भगतों के आचार-विचार कुछ और ही होते हैं। भगत बिना स्नान किए कुछ नहीं खाता। गंगाजी अगर घर से दूर हों और वह रोज़ स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन-भाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा-अर्चा उसके लिये अनिवार्य है। स्नान-पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि भूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत भूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर भूठ का ढंड एक मिले, तो भगत को एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध चम्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिये चमा नहीं है, प्रायश्चित्त नहीं है, अगर है भी तो बहुत कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मजूर का जीवन था। जीवन का कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसके सामने न थी। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहाँ का मार्ग काँटों से भरा हुआ है। स्वार्थ-सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था, इसी काँटे से वह



मे भी भाग्यहीनी की सजाट न ली जाती। समय के पाग कोड़े जाने ही न पाता। दोनों लड़के या बच्चे बुलाकी दूर ही से मायना कर लिया करती। गाँव भर में मुसल का मान-सम्मान बढ़ा था, अपने घर में चला था। लड़के बसहा सरकार पाग बुरक करते। उसे हाथ में सामग्री उठाते देण लपककर गूँट्टा लेने, उसे निलम न भरने देते, मदा तक कि उसकी भोनी छोटने के लिये भी आपस करना न। मगर अधिकार उसके हाथ में न था। यह अब घर का मगामी नहीं, मन्दिप का देवता था।

३

एक दिन बुलाकी आंगनी में दाल छोट ग्ही थी कि एक भिगमगा द्वार पर आकर लिजान लगा। बुलाकी ने सोना, दाल छोट लूँ, तो उसे कुछ दे दूँ। इनने मे बडा लटका भोला आहर बोला—अस्मा, एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाट रहे हैं। कुछ दे दो। नहीं, उनका रोया दुखी हो जायगा।

बुलाकी ने उपेक्षा-भाव से कहा—भगत क पाँव में क्या मेहदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं दे देते। क्या मेरे चार हाथ हैं ? किम-किमका रोया सुखी करूँ, दिन भर तो तौता लगा रहता है।

भोला—चोपट करन पर लगे हुए हैं और क्या। अभी महंगू बेग देने आया था। हिमाव से ७ मन हुए। तौला तो पाने सात मन ही निकले। मैंने रहा—दस सेर और ला, तो आप बैठे-बैठे कहते हैं, अब उननी दूर कहाँ लेने जायगा। भरवाई लिख





बुलाकी—तुम तो भगवान् का काम करने को बैठ ही हो, क्या घर-भर भगवान ही का काम करेगा ?

सुजान—कहाँ आटा रक्खा है, लाओ मैं ही निकालकर दे आऊँ। तुम रानी बनकर बैठो।

बुलाकी—आटा मैंने मर-मर कर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरो के लिये पहर रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूँ।

सुजान भंडारघर में गए और एक छोटी-सी छावड़ी जो से भरें हुए निकले। जो सेर-भर से कम न था। सुजान ने जान-बूझकर, केवल बुलाकी और भोजा के चिढ़ाने के लिये, भिजा-परम्परा का उल्लंघन किया था। तिस पर भी यह दिखाने के लिये कि छावड़ी में बहुत ज्यादा जो नहीं है, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे। चुटकी इतना बोक न मँभाल सकती थी। हाथ काँप रहा था। एक क्षण का विलंब होने में छावड़ी के हाथ से छूटकर गिर पडने की सम्भावना थी। इमीलिये वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहत थे। महमा भोला न छावड़ी उनके हाथ से छीन ली और त्पोरियाँ बदलकर बोला—मेन का माल नहीं है, जो लुटाने चले हो। छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।

सुजान ने खिमियाकर कहा—मैं भी तो बैठा नहीं रहता।

भोला—भीख भीख की तरह दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि इज्जत बनी रहे

मे, नहीं उमका रोया दुखी होगा। मैंने भरपाई नहीं लिखी।  
 मम संर बाकी लिख दी।

बुलाकी—बहुत अच्छा किया तुमने, बचने दिया करो। दस-  
 पाँच रूफे सुँइ की न्वायेंगे, तो आप ही बोलना छोड़ देगे।

भोला—दिन-भर एक-न-एक खुचड निकालते रहते हैं। सौ  
 रूफे कह दिया कि तुम घर-गृहन्थी के मामले मे न बोला करो,  
 पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।

बुलाकी—मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरु-  
 नत्र न लेने देनी।

भोला—भगत क्या हुए कि दीन-दुनिया दोनों से गए।  
 नारा दिन पूजा-पाठ मे ही उड़ जाता है। अभी ऐसे बूड़े नहीं हो  
 गए कि कोई काम ही न कर सके।

बुलाकी ने आपत्ति की—भोला, यह तो तुम्हारा कुन्याव है।  
 पावडा-कुडाल अब उनसे नहीं हो सकना, लेकिन कुड-न-कुड  
 नो करते ही रहते हैं। बैलो को सानी-पानी देते हैं गाय दुहाते  
 हैं और भी जो कुड हो सकता है, करते हैं।

भिलुक अभी तक खडा चिला रहा था। सुज्ञान ने जब घर  
 में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अन्दर गया और  
 कठोर स्वर से बोला—तुम लोगो को कुछ सुनाई नहीं देता कि  
 द्वार पर कौन घंटे-भर से खडा भीख मांग रहा है। अपना काम  
 तो दिन-भर करना ही है, एक घन भगवान् का काम भी तो कर  
 दिया करो।

हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना भी न निकला कि ले जाते हैं, ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। भादों की अँधेरी रातों में मड़ैया लगाए जुआर की रखवाली करता था, जेठ-वैशाख की दोपहरी में भी दम न लेता था और अब मेरा घर पर इतना अधिकार भी नहीं है कि भीख तक दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिये था, चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरो को खिला देता हूँ; इसमें किसी के बाप का क्या साम्रा। अब इस वक्त मनाने आई है ! इसे मैंने फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ, नहीं तो गाँव में ऐसी कौन औरत है, जिसने खसम की लातों न खाई हो; कभी कड़ी निगाह से देखा तक नहीं। रुपए-पैसे लेना-देना, सब इसी के हाथ में दे रक्खा था। अब रुपए जमा कर लिए हैं, तो मुझी से धमंड करती है। अब इसे बेटे प्यार हैं, मैं तो निखट्टू, लुटाऊ, धर-फूँकू, बोवा हूँ। मेरी इसे क्या परवा। तब लड़के न थे, जब बामार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर वेद के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी माँ है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ, मुझसे घर से मतलब ही क्या। बोला—मैं अब खा-पीकर क्या करूँगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिलाकर दाने को क्यों

और तुम्हें लुटाने की नृमती है। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।

सुजान ने हमका कोर्ट जवाब न दिया। बाहर आकर भित्तारी से कह दिया—बाबा हम समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है और स्वयं पेड़ के नीचे बैठकर विचारों में मग्न हो गया। अपने ही घर में हमका यह अनादर! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पांव थके नहीं हैं, घर का कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। उन पर यह अनादर! उन्नी ने यह घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा अब वह द्वार का कुत्ता है, पडा रहे और घरवाले जो रूखा-मूखा ढे ढे वह खाकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कर दे सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

सन्ध्या हो गई थी भोला का छोटा भाई शकर नारियल भर कर लाया। सुजान न नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया। धरे-धरे तब तक जल गया। जब दरम भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पड़क नीचे से न उठा।

कुछ दर और सुजरी भोजन तैयार हुआ भोला बुलाने आया। सुजान न कह मुख नही है बहुत मनवान करने पर भी न उठ तब बुनका ने आकर कहा 'गाना खान क्या नहीं चलते। जी तो अच्छा है।'

सुजान को सबसे अधिक क्रोध बुलाकी ही पर था यह भी लडका क साथ है। यह बैठी देखती रही और भाला ने में

कमाई है; हाँ, मैं बाहरी आदमी हूँ ।

बुलाकी—बेटे तुम्हारे भी तो हैं ।

सुजान—नहीं, मैं ऐसे बेटों से वाज़ आया । किसी और के बेटे होंगे । मेरे बेटे होते, तो क्या मेरी यह दुर्गति होती ।

बुलाकी—गालियाँ दोगे तो मैं भी कुछ कह बैठूँगी । सुनती थी, मर्द बड़े समझदार होते हैं, पर तुम तो सबसे न्यारे हो । आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखे, वैसा काम करे । अब हमारा और तुम्हारा निवाह इसी में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें, जो लड़कों को अच्छा लगे । मैं यह बात समझ गई, तुम क्यों नहीं समझ पाते । जो कमाता है उसी का घर में राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है । मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती, तुम क्यों अपने मन की करते हो । इतने दिनों तो राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हो । चलो खाना खा लो ।

सुजान—नो अब मैं द्वार का कुत्ता हूँ ?

बुलाकी—बात जो थी, वह मैंने कह दी, अब अपने को जो चाहे समझो ।

सुजान न उठे । बुलाकी हार कर चली गई ।

#### ४

सुजान के सामने अब एक नई समस्या खड़ी हो गई थी । वह बहुत दिनों से घर का स्वामी था और अब भी ऐसा ही समझता था । परिस्थिति में कितना उलट-फेर हो गया था, इसकी

खराब करोगी। रख दो, बेटे दूसरी बार खाएँगे।

बुलाकी—तुम तो जरा-जरा सी चान पर निनक जाते हो। सब कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना ही तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ ?

सुजान—हाँ, बेचारा इतना ही कह कर रह गया। तुम्हें तो मजा आता, जब वह ऊपर से दो-चार डंडे लगा देता। क्यों ? अगर यही अभिलाषा है, तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं, भोला को क्यों बुलानी हो, तुम्हीं न जमा दो दो-चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाय।

बुलाकी—हाँ और क्या, यह तो नारी का धर्म ही है। अपने भाग सराहो कि सुन्न-जैमी नीधी औरत पाती। जिस वन चाहने हो, बिठाते हो। ऐसी सुँहजोर होनी तो तुम्हारे घर में एक दिन निवाह न होता।

सुजान—हाँ भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि तुम देवी थीं और हो। मैं अब भी राजम या और सब तो वैश्य हो गया हूँ। देटे कमाऊ है, इनकी-सी न करोगी तो क्या बेरी-सी करोगी सुभते सब क्या लेना-देना है।

बुलाकी—तुम नागडा करने पर तुम देटा हा और मैं नागडा बचानी हूँ कि घर आठमाँ बैसेगे। सब कर रोगा सब तो सब से, नहीं तो मैं भी नागर सो रहूँगी।

सुजान—तुम शूरी बसे तो रही। तुम्हारे घर में तो

नहीं। गत को मोया ही नहीं।

सुजान भगन ने ताने में रुहा—वह मोना ही कब है। जब देखना हूँ, काम ही करता रहना है। ऐसा रुमाऊ संसार में और कौन होगा !

इतने में भोला आँखें मलना हुआ बाहर निम्ला। उसे भी यह ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। मा से बोला—क्या शंकर आज बड़ी गन को उठा था, अन्मा ?

बुलाकी—वह तो पड़ा मो रहा है। मैंने तो ममन्ता, तुमने काटी होगी।

भोला—मैं तो मवरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर चाहे जितना काम कर लूँ, पर गन को मुक्त से नहीं उठा जाता।

बुलाकी—तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है ?

भोला—हाँ, मालूम तो होना है। गन-भर सोए नहीं। मुक्त से कल बड़ी भूल हुई। अरे ! वह तो हल लेकर जा रहे हैं ? जान देन पर उताह हो गए हैं क्या ?

बुलाकी—कोधी तो मदा के हैं अब किसी की सुनेगे थोडे ही।

भोला—शकर को जगा दो मैं भी जल्दी से मुँह-हाथ धोकर हल ले जाऊँ।

जब और किमानो के साथ हल लेकर भोला खेत में पहुँचा तो सुजान आया खेत जोन चुक थे। भोला ने चुपके-से काम करना शुरू किया। सुजान से कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ी।

ने खबर न थी। लड़के उत्तकी सेवा-सम्मान करते हैं, यह बात मे भ्रम में डाले हुए थी। लड़के उसके सामने बिलन नहीं पीते, नट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके गृहत्वामी होने का प्रमाण न था ? पर आज उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल श्रद्धा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। क्या इस श्रद्धा के बदले वह अपना अधिकार छोड़ सकता था ? कदापि नहीं। जब तक जिस घर में राज्य किया, उसी घर में पराधीन बनकर वह नहीं रह सकता। उसको श्रद्धा की चाह नहीं, सेवा की भूख नहीं। उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता। मन्दिर का पुजारी बनकर वह नहीं रह सकता।

न-जाने कितनी रात दाकी थी। सुजान ने उठकर गँडाते से बैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गाव सोता था, पर सुजान करदी काट रहे थे। इनना भ्रम उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ा था, दरबार चारे के लिये हाय-हाय पड़ी रहती थी। शकर भी काटता था भोला भी काटता था पर चारा पूरा न पड़ता था 'समय' इन लौहों को दिख दगा कि चारा कैसे काटना च था। चार न मन कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया। थोर दुकड़े 'कतन' मगोन 'सुढौल' धे, मानो साचे में टाले 'ए हा'

मुँह खँधेरें सुलायी उठी तो कटिया का टा, दरबार, र, र, गई। बोली क्या भोला 'राज रात भर कटया' हा क 'न रह गया ? कितना बड़ा कि घंटा जी म ज' है पर म न न ही



साथ रात-दिन काम करने को तैयार हैं ।

अन्य कृषकों की भाँति भोला अभी कमर सीधी कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया और खेत की ओर चले । दोनों बैल उमंग से भरे दौड़े चले जाते थे, मानो उन्हें स्वयं खेत में पहुँचने की जल्दी थी ।

भोला ने मड़ैया में लेटे-लेटे पिता को हल लिए जाते देखा, पर उठ न सका । उसकी हिम्मत छूट गई । उसने कभी इतना परिश्रम न किया था । उसे वनी बनाई गिरिस्ती मिल गई थी । उसे ज्यो-त्यो चला रहा था । उन दामो वह घर का स्वामी बनने का इच्छुक न था । जवान आदमी को बीस धंधे होते हैं । हँसने बोलने के लिये, गाने-बजाने के लिये, उसे कुछ समय चाहिए, पड़ोस के गाँव में दगल हो रहा है । जवान आदमी कैसे अपने को वहाँ जाने से रोकगा ? किमी गाँव में बरात आई है, नाच-गाना हो रहा है । जवान आदमी क्यों उसके आनंद से वंचित रह सकता है ? वृद्धजनों के लिये ये बाधाएँ नहीं । उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेन-तमाशे से गरज, केवल अपने काम से काम है ।

बुलाकी ने कहा—भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गए ।

भोला—जाने दो अम्मा, मुझसे तो यह नहीं हो सकता ।

५

सुजान-भगत क इम नवीन उत्साह पर गाँव में टीकाएँ हुई । निकल गई सारी भगती । बना हुआ था । माया में फँसा हुआ है ।

दोपहर हुआ। सभी किसानों ने हल छोड़ दिए। पर सुजान-भगत अपने काम में मग्न हैं। भोला थक गया है। उसकी बार-बार इच्छा होती है कि बैलों को खोल दे। मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता। उसको आश्चर्य हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं।

आखिर डरते-डरते बोला—दादा अब तो दोपहर हो गयी। हल खोल दे न ?

सुजान—हाँ खोल दो। तुम बैलों को लेकर चलो मैं डांड फेंक कर आता हूँ।

भोला—मैं संभ्रा को फेंक दूँगा।

सुजान—तुम क्या फेरु दोगे। देखते नहीं हो, खेत कटोरे की तरह गहरा हो गया है। अभी तो बीच में पानी जम जाता है। इसी गोड़ूँड़ के खेत में बीस मन का बीघा होता था। तुम लोगों ने इसका सत्यानास कर दिया।

बैल खोल दिए गए। भोला बैलों को लेकर घर चला, पर सुजान डांड फेंकते रहे। आध घंटे के बाद डांड फेंक कर वह घर आए। मगर धरुन का नाम न था। नहा-ग्यारस आरास करने व घड़ले उन्होंने बैलों को सुहलाना शुरू किया। उनकी पीठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूँछ सुहलाई। बैलों की पूँछ खींची थी। सुजान की गोद में फिर स्वयं उन्हें परमथनीय सुख मिल रहा था। बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आनन्द प्राप्त हुआ था। उनकी आँखों में कलकलता भरी हुई थी। मानों वे बर सों ग. इस दुस्तर

भगत—नहीं, तुमसे जितना उठ सकें, उठा लो।

भिन्नक के पास एक चादर थी। उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का उसे साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझ कर अश्रामन देते हुए बोले—बस ! इतना तो एक बच्चा उठा ले जायगा।

भिन्नक ने भोला की और संदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा—मेरे लिये इतना बहुत है।

भगत—नहीं, तुम सकुचते हो। अभी और भरो।

भिन्नक ने एक पंसेरी अनाज आर भरा और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा।

भगत उसकी ओर क्या देखते हो बाबा जी, मैं जो कहता हूँ, वह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।

भिन्नक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठान दी, ना कितनी भद्दा होगी। और भिन्नको को हंसने का अवसर मिल जायगा, सब यही कहेंगे कि भिन्नक कितना लोभी है। उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी।

तब सुजान भगत न चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बाँधकर बोले—इसे उठा ले जाओ।

भिन्नक—बाबा, इतना तो मुझसे उठ न सकेगा।

भगत—अरे ! इतना भी न उठ सकेगा ! बहुत होगा तो

आदमी काहे को है, भूत है ।

मगर भगत जी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं । उनका आदर-सम्मान होता है । अब के उसकी खेती ने सोना उगल दिया है । बखारी में अनाज रखने की जगह नहीं मिलती । जिस खेत में पाँच मन मुरिकल से होता था, उसी खेत में अब की बार दस मन की उपज हुई है ।

चैत का महीना था । खलिहानों में सतयुग का राज था । जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे । यही समय है, जब कृपकों को भी थोड़ी देर के लिये अपना जीवन सफल मालूम होता है; जब गर्व से उनका हृदय उद्वलने लगता है । सुजान भगत टोकरों में अनाज भर-भर कर देते थे और दोनो लड़के टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे । कितने ही भाट और भिलुक भगत जी को घेरे हुए थे । उनमें वह भिलुक भी था, जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था ।

सहसा भगत ने उस भिलुक से पूछा—क्यों बचा, आज कहीं-कहीं चकर लगा आए ?

भिलुक—अभी तो कहीं नहीं गया भगत जी, पहले तुम्हारे ही पास आया हूँ ।

भगत—अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है । इसमें से जितना अनाज उठा कर ले जा सको, ले जाओ ।

भिलुक ने लुब्ध नेत्रों से ढेर को देखकर कहा—जिना अपने हाथ से उठाकर दे दोगे, इतना ही लूँगा ।

# विश्व साहित्य ग्रन्थमाला के कुछ

## प्रकाशन—

### कहानी संग्रह—

संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	२)
चरगागाह ( तुर्गेनेव )	१)
पाप ( चैन्वव )	१)
विवाह की कहानियाँ ( हाहॉ )	१)
वनीयतनामा ( मोपानां )	१)
अमावस ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार )	२॥)
भय का राज्य ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार )	१)
नई कहानियाँ ( जैनेन्द्रकुमार )	२)
प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	११=)

### नाटक—

गंगा प्रताप ( द्विजेन्द्रलालराय )	११=)
मिर्ज़ा विजय ( . )	१॥)
अशोक ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार )	१११=)
रंवा	१)
वीर पेशवा ( मन्तराम )	१॥)
कुन्दमाला दिग्नाग )	१)

### कविता —

अन्नवेदना ( पुन्याशंकरा )	१॥)
निर्गाथ ( रामकृष्ण वर्मा )	१)
शून्यता ( मोहनलाल सहस्र )	१॥)

साहित्य भवन, हम्पनाल रोड, लार्डो ।



